जनवरी-मार्च 2011
ISSN: 2320-7736

विज्ञान गरिमा सिंधु

अंकः 76

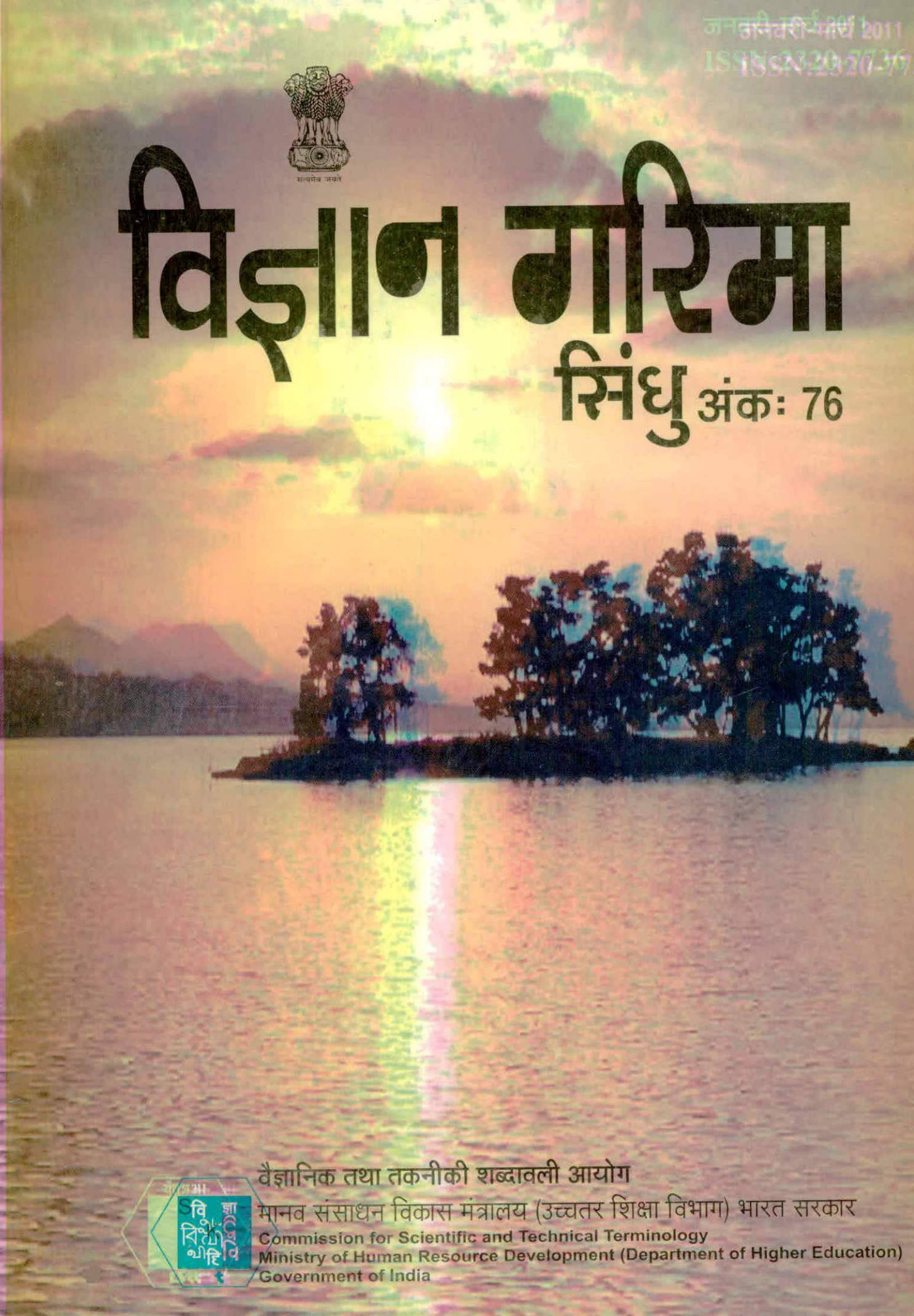

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
Commission for Scientific and Technical Terminology
Ministry of Human Resource Development (Department of Higher Education)
Government of India

विज्ञान गरिमा सिंधु

(त्रैमासिक विज्ञान पत्रिका)

अंक 76
(जनवरी–मार्च, 2011)

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग)
भारत सरकार

760 HRD/13—1A

'विज्ञान गरिमा सिंधु' एक विज्ञान त्रैमासिक पत्रिका है। पत्रिका का उद्देश्य है– विश्वविद्यालयी छात्रों के लिए हिंदी में विज्ञान संबंधी उपयोगी एवं अद्यतन पाठ्य पुस्तकीय तथा संपूरक सहित्य की प्रस्तुति। इसमें वैज्ञानिक लेख, शोध-लेख, तकनीकी निबंध, शब्द-संग्रह, शब्दावली-चर्चा, विज्ञान-कथाएं, विज्ञान-समाचार, पुस्तक-समीक्षा आदि का समावेश होता है।

लेखकों के लिए निर्देश

1. लेख की सामग्री मौलिक, अप्रकाशित तथा प्रामाणिक होनी चाहिए।
2. लेख का विषय मूलभूत विज्ञान, अनुप्रयुक्त विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंधित होना चाहिए।
3. लेख सरल हो जिसे विद्यालय/महाविद्यालय के छात्र तथा सामान्य पाठक आसानी से समझ सकें।
4. लेख लगभग 2000 शब्दों का हो। कृपया टाइप किया हुआ या कागज के एक ओर स्पष्ट हस्तलिखित लेख भेजें जिसके दोनों तरफ हाशिया भी छोड़ें।
5. प्रकाशन हेतु भेजे गए लेख के साथ उसका सार भी हिंदी में अवश्य भेजें।
6. लेख में आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का ही प्रयोग करें। लेख में प्रयुक्त तकनीकी/वैज्ञानिक हिंदी शब्द का मूल अंग्रेजी पर्याय भी आवश्यकतानुसार कोष्ठक में दें।
7. श्वेत-श्याम या रंगीन फोटोग्राफ स्वीकार्य हैं। रेखाचित्र सफेद कागज पर काली स्याही से बने होने चाहिए।
8. लेख के प्रकाशन के संबंध में संपादक का निर्णय ही अंतिम होगा।
9. लेखों की स्वीकृति के संबंध में पत्र व्यवहार का कोई प्रावधान नहीं है।
10. अस्वीकृत लेख वापस नहीं भेजे जाएंगे। अतः लेखक कृपया टिकट-लगा लिफाफा साथ न भेजें।
11. प्रकाशित लेखों के लिए मानदेय की दर 250/– रुपए प्रति हजार शब्द है, तथा न्यूनतम राशि 150 रुपए और अधिकतम राशि 1000 रुपए है। भुगतान लेख के प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।
12. कृपया लेख की दो प्रतियां निम्न पते पर भेजें:

    श्री अशोक एन. सेलवटकर
    संपादक, विज्ञान गरिमा सिंधु
    वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
    पश्चिमी खंड – 7, रामकृष्णपुरम्,
    नई दिल्ली – 110066
13. लेख CD में भी भेजे जा सकते हैं साथ में फोंट भी भेजें ऐसे लेखों को प्राथमिकता दी जा सकती है।
14. समीक्षा हेतु कृपया पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां भेजें।

सदस्यता शुल्क :

	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
सामान्य ग्राहकों/संस्थाओं के लिए प्रति अंक	रु. 14.00	पौंड 1.64	डॉलर 4.84
वार्षिक चंदा	रु. 50.00	पौंड 5.83	डॉलर 18.00
विद्यार्थियों के लिए प्रति अंक	रु. 8.00	पौंड 0.93	डॉलर 10.80
वार्षिक चंदा	रु. 30.00	पौंड 3.50	डॉलर 2.88

वेबसाइट : www.cstt.nic.in
कापीराइट ©2010
प्रकाशक :
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
भारत सरकार, पश्चिमी खंड–7
रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली –110066

बिक्री हेतु पत्र–व्यवहार का पता :
वैज्ञानिक अधिकारी (बिक्री),
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली– 110 066
दूरभाष – (011) 26105211
फैक्स – (011) 26102882

बिक्री स्थान :
प्रकाशन नियंत्रक, प्रकाशन विभाग
भारत सरकार,
सिविल लाइन्स, दिल्ली – 110054
E-mail : vgs.cstt@gmail.com

760 HRD/13—1B

अध्यक्ष की कलम से

विज्ञान गरिमा सिंधु' का यह 76 वे अंक का प्रकाशन वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग की स्थापना के पचास वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में किया जा रहा है। आयोग ने हिंदी की नवीनतम वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग करते हुए विज्ञानप्रेमी विद्वानों के लिए सामायिक अध्ययन सामग्री प्रस्तुत करने के लिए पत्रिका का प्रस्तुत संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। हमें प्रसन्नता है कि हम विगत कई वर्षों से हिंदी के अनेक प्रतिष्ठित विज्ञान-लेखकों की रचनाएँ पाठकों तक पहुँचाते रहे हैं। इस पत्रिका में लिखने के लिए अनेक नए विज्ञान–लेखक उभर कर सामने आए तथा अनेक सुप्रतिष्ठित लेखकों ने हमें अपने अद्यतन गवेषणापूर्ण लेख भेजकर इसकी प्रामाणिकता और प्रतिष्ठा बढाने में बहुमूल्य योगदान किया। हम अपने सभी लेखकों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

इस पत्रिका के संपादक श्री अशोक सेलवटकर को इस पत्रिका के प्रकाशन के लिए साधुवाद,जिन्होनें शब्दावली निर्माण एवं उसके प्रचार–प्रसार कार्य के साथ इस दायीत्व को भी सकुशल निभाया है।

नई दिल्ली

(प्रो. केशरी लाल वर्मा)
अध्यक्ष
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग

संपादकीय

प्रस्तुत अंक में जैव प्रौद्योगिकी, पर्यावरण, वनस्पति विज्ञान, प्राणिविज्ञान, आयुर्विज्ञान, कृषि, मनोविज्ञान, भौतिकी आदि विषयों से संबंधित ज्ञानवर्द्धक तथा शोधपरक लेख सम्मिलित किए गए हैं। जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जाने–माने विज्ञान–लेखक डॉ. दिनेश मणि ने भारतीय संदर्भ में जीन–अनुक्रमण का विवेचन करते हुए भारतीय जीनोम विविधता परियोजना के अंतर्गत भारतीय जनसमुदायों की जीन–विविधता का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है जिसके आधार पर यह निर्धारण करना संभव होगा कि भारत के विभिन्न जन–समुदायों, जातियों अथवा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्थित जनतापर आनुवंशिकता, पैतृकता, स्वजातिगत अनन्यता का क्या प्रभाव या दुष्प्रभाव पड़ा है और इन जाति–विशिष्ट विकृतियों के उपचार में किन तथ्यों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। वैज्ञानिक सूचना–संबंधी लेखों में 'जैव विविधता' तथा 'सांपों का विचित्र संसार' उपयोगी जानकारी प्रदान करते हैं। कृषि जगत् के प्रति सचेत लेखकों से 'जलवायु–परिवर्तन एवं इसका कृषि पर प्रभाव' एवं 'गन्ने के साथ सह–फसली खेती' विषयों पर प्राप्त लेखक प्रकाशित किए जा रहे हैं। पहले लेख में जलवायु–परिवर्तन से कृषि पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेषण किया गया है, दूसरे लेख में इस सहफसली खेती के विभिन्न आयामों का विशद वैज्ञानिक विवेचन किया गया है।

आयुविज्ञान का विषयों के अंतर्गत हमारी पत्रिका नियमित विद्वान लेखक डॉ. जे. एल. अग्रवाल ने मोटापे के दुष्प्रभाव के संबंध में सरल शब्दों में महत्वपूर्ण जानकारी दी है। आयुर्वेदिक वनौषाधि हरड़ तथा नोनी के गुणों का विवेचन भी किया गया है। दो जिज्ञासापरक लेखक भी इसमें दिए जा रहे हैं। एक का विषय है परमाणु क्रमांक 8 के नए नामकरण पर विचार जिस पर पाठकों की प्रतिक्रिया की अपेक्षा रहेगी। दूसरे लेखक में मनश्चिकित्सा के एक साधन के रूप में पुस्तकों द्वारा चिकित्सा अर्थात् बिब्लियोग्राफी के विषय में रोचक सामग्री दी गई है।

आशा है कि हमेशा की तरह इस अंक का स्वागत होगा व अगले अंक के इंतजार के साथ नऐ लेखो की प्राप्ती की अपेक्षा करते हुए वाचकों के समक्ष प्रस्तुत है अंक–76.

(अशोक एन. सेलवटकर)
'संपादक'

विज्ञान गरिमा सिंधु

हिंदी में वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेखन की स्तरीय त्रैमासिकी

अंक–76, जनवरी–मार्च, 2011

प्रधान संपादक
प्रो. केशरी लाल वर्मा
अध्यक्ष

संपादक
अशोक सेलवटकर
वैज्ञानिक अधिकारी

विशेष सहयोग
देवेंद्र दत्त नौटियाल
ज्योति मलिक

प्रकाशन-मुद्रण व्यवस्था
डॉ. धर्मेन्द्र कुमार, स.नि.
श्री आलोक वाही
कलाकार
श्री कर्मचंद शर्मा
प्र.श्रे.लि.

बिक्री एवं वितरण
डॉ. बी. के. सिंह
वैज्ञानिक अधिकारी

संपर्क सूत्र
'संपादक'
विज्ञान गरिमा सिंधु
वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग
पश्चिमी खंड–7
आर. के. पुरम, नई
दिल्ली–110066

अनुक्रम **पृ. सं.**

1.	जैव विविधता : प्रकृति का अनुपम उपहार	*डॉ. दीपक कोहली*	01
2.	जीनोम अनुक्रमण के निहितार्थ	*डॉ. दिनेश माणि*	04
3.	हीरों का मूल्यांकन एवं व्यापार	*रमेंश चंद्र*	09
4.	परमाणु क्रमांक 8 के लिए नाम की खोज	*डॉ. जितेंद्रकुमार गुप्त*	14
5.	कुक्कुट पालन	*डॉ. सी.पी सिंह*	18
6.	गन्ने के साथ सह–फसली खेती	*आर.एस. सेंगर रेशू चौधरी एवं अशोक सेलवटकर*	21
7.	हरड़ : एक उपयोगी वनौषधि	*डॉ. दिलीप कुमार मौर्य*	28
8.	सांपों का विचित्र संसार	*डॉ. हेमलता पंत*	34
9.	नोनी : शक्तिशाली स्वास्थ्यवर्धक पेय	*डॉ. नवीन कुमार बौहरा*	39
10.	मोटापे के दुष्प्रभाव	*डॉ. जे.एल. अग्रवाल*	42
11.	जलवायु परिवर्तन तथा उसका कृषि पर प्रभाव	*डॉ. बी.सी जाट*	46
12.	विज्ञान समाचार	*डॉ. दीपक कोहली*	49
13.	बिब्लियोथेरेपी अर्थात् पुस्तकों द्वारा चिकित्सा	*सीताराम गुप्ता*	50
	लेखक–परिचय		53
	परिशिष्ट		
	आयोग के प्रकाशन		54
	ग्राहक फार्म		58
	बिक्री संबंधी नियम		59
	प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची		60

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों, अभिव्यक्त विचारों आदि से वैज्ञानिक तथा तकनीक शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार या संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। यह पत्रिका वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली के प्रचार–प्रसार के साथ हिंदी में वैज्ञानिक लेखन को बढ़ावा देने के लिए प्रकाशित की जाती है।

जैवविविधता : प्रकृति का अनुपम उपहार

डॉ. दीपक कोहली

ब्रह्मांड में हमारा पृथ्वी ग्रह ही ऐसा ज्ञात ग्रह है जहां जीवन के असंख्य रूप विद्यमान हैं। जीवनदायी और अद्भुत पृथ्वी ग्रह, जीवन के विविध रूपों को आश्रय दिए हुए हैं। जीवन की यही विविधता जैवविविधता कहलाती है। जैवविविधता में पृथ्वी पर पाए जाने वाले समस्त जीव–जंतु, वनस्पतियां और सूक्ष्म जीवन सम्मिलित हैं। जैवविविधता जीवन और प्रकृति के विविध रंगों को संजोए हुए है। पृथ्वी पर पाए जाने वाली लाखों प्रकार की वनस्पतियां और भांति–भांति के जीवजंतु जैवविविधता के अभिन्न अंग हैं।

जैवविविधता का अर्थ है जैव यानी जीवन तथा विविधता यानी भिन्नता, अर्थात् इस पृथ्वी पर पाए जाने वाले जीवन के विभिन्न रूप चाहे वे पेड़–पौधे हों या जीव–जंतु। जीवाणु, शैवाल, एककोशकीय जीवों से लेकर फूल वाले पौधों तथा सभी जंतुओं यानी जीवाणुओं से लेकर व्हेल और हाथी तक सभी जैवविविधता के अंग हैं अर्थात् जीवन के विभिन्न रूप जो इस पृथ्वी पर हैं वे सब जैव–विविधता में शामिल हैं।

जैवविविधता प्रकृति का उपहार है जो जीवन के विभिन्न रूपों द्वारा पृथ्वी को जीवनमय बनाए हुए है। पृथ्वी पर जीव–जंतुओं एवं वनस्पतियों की असीम जातियां पाई जाती हैं। इस पृथ्वी पर जहां कमल, चंपा, चमेली, कनेर एवं गुलाब जैसे सुंदर फूलदार पौधे और नागफनी व खेजड़ी जैसे रेगिस्तानी पौधे पृथ्वी पर जीवन की विविधता को बनाए रखते हैं, वहीं नीम, पीपल और वट जैसे विशालकाय वृक्ष जीवन के अनेक रूपों को आश्रय प्रदान कर जैवविविधता को बनाए हुए हैं। वनस्पतियां ही नहीं, पृथ्वी पर तो जीव–जंतुओं की दुनिया भी अद्भुत विविधता लिए हुए हैं। यहां हिरण, खरगोश, और मोर जैसे सुंदर जीवों के साथ शेर एवं बाघ जैसी हिंसक जीव जातियां भी उपस्थित हैं जो पृथ्वी पर जीवन की विविधता की परिचायक हैं। पृथ्वी पर पाई जाने वाली मोर, कबूतर, मैना और गौरेया आदि पक्षियों की जातियां जीवन के रंग–बिरंगे रूपों का हिस्सा हैं।

पूरी पृथ्वी पर चाहे रेगिस्तान हो या महासागर, या हिमालय जैसे पर्वतीय क्षेत्र या फिर बर्फीली धरती, जीवन सभी जगह अपने अनगिनत रूपों में खिलखिला रहा है। धरती से कहीं अधिक जैवविविधता महासागरों में मिलती है। यहां प्रवाल भित्तियों यानी कोरल रीफ की अनोखी रंग–बिरंगी दुनिया उपस्थित है। महासागरों में पाई जाने वाली हजारों किस्म की मछलियां और अनेक जीव, जीवन की विविधता का अनुपम उदाहरण हैं।

प्रकृति ने सभी जीवों को कुछ न कुछ ऐसी विशेषताएं प्रदान की हैं जो उन्हें अन्य जीवों से विशिष्ट बनाती हैं। ये विशेषताएं जीवों को अपने परिवेश से सामंजस्य बनाने और जीवन-यापन करने में सहायक होती हैं। जैसे प्रकृति ने ध्रुवीय प्रदेशों में रहने वाले भालू को श्वेत आवरण दिया है और रेगिस्तान में जीवन-यापन करने मे ऊंट को बिशेष रचना दी है और

मछलियों को पानी में रहने के लिए विशेक्ष क्षमता प्रदान की है। इस प्रकार प्रकृति ने सभी प्रकार के जीवन को विविध रंगों और क्षमताओं से संवारा है ताकि प्रत्येक जीवन अपने परिवेश में जीवन-यापन करता रहे।

पृथ्वी पर दिखाई देने वाले जीव जगत् से कहीं अधिक तादाद तो अत्यंत छोटे जीवों यानी सूक्ष्म जीवों की है जिन्हें हम नंगी आंखों से नहीं देख सकते हैं। एक ग्राम मिट्टी में लगभग 10 करोड़ जीवाणु और 50 हजार फफूंदी जैसे जीव होते हैं। अत्यंत छोटे होने के बावजूद भी, सूक्ष्मजीवों का जीवन के स्थायित्व में महत्वपूर्ण योगदान है। सूक्ष्मजीव अपशिष्ट पदार्थों को सरल पदार्थों में तोड़कर पृथ्वी को अपशिष्ट पदार्थों से मुक्त रखते हैं। यदि सूक्ष्मजीव न हों तो पृथ्वी पर कूड़े–कचरे का ढेर इतना बढ़ जाएगा कि यहां जीवन संभव नहीं हो सकेगा। छोटे–छोटे सूक्ष्मजीव खाद्य सुरक्षा का आधार होते हैं। सूक्ष्मजीवों की विभिन्न जातियां मिट्टी से विभिन्न पोषक तत्वों को फसलों तक पहुंचाती हैं जिससे फसल की पोषक आवश्यकताएं पूर्ण होती हैं। इतना ही नहीं, भूमि से नाइट्रोजन को वायुमंडल में पहुँचाने की क्रिया में भी सूक्ष्मजीवों का महत्वपूर्ण योगदान है। इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि पृथ्वी पर जीवन को बनाए रखने में सूक्ष्मजीव विशेष महत्वपूर्ण हैं। अतः पृथ्वी पर हर जीव महत्पूर्ण व अमूल्य है।

जीवन के विविध रूपों में मानव को सबसे बुद्धिमान जीव होने का खिताब हासिल है। लेकिन आज मनुष्य ही जीवों के विविध रूपों के साथ पृथ्वी ग्रह को भी हानि पहुँचा रहा है। आज मानव गतिविधियों के चलते पर्यावरण और जैवविविधता संबंधी अनेक समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं। मानव ने विरासत में मिली बहुमूल्य जैव–विविधता को जाने–अनजाने बहुत नुकसान पहुंचाया है। विकास के लिए मानव ने पर्यावरण और प्रकृति के महत्व को नजरअंदाज कर दिया है। आज वैश्विक कल्याण की सोच की बजाए स्वयं के कल्याण की सोच ने मानव को प्रकृति का विरोधी बना दिया है। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए मानव ने प्रकृति का अंधाधुंध दोहन कर प्राकृतिक संपदा का अपक्षय किया जिससे प्राकृतिक परिवेश में रहने वाले जीव भी प्रभावित हुए हैं। आज जैवविविधता सिमटती जा रही है। पृथ्वी पर घटती जैवविविधता सभी के लिए चिंता का विषय है। 'ग्लोबल इन्वायरन्मेंट आउटलुकइन्वायरन्मेंट फॉर डेवेलेपमेंट' (जीईओ–4) की रिपोर्ट के अनुसार जातियों के विलोपन की दर अभी जारी है। लेकिन इस बार यह विलोप प्राकृतिक न होकर मानवी गातिविधियों की देन है। विलोपन की घटना के दौरान एक साथ असंख्य जातियां विलुप्त हो जाती हैं। पिछली बार ऐसा विनाश 6.5 करोड़ वर्ष हुआ था। आज मानव की आवश्यकताएं बढ़ रही हैं। हमारी बढ़ती आवश्यकता का अर्थ है कृषि एवं औद्योगिक कार्यों का बढ़ना जिससे उर्वरक, कीटनाशियों, पीड़कनाशियों एवं पर्यावरण के लिए नुकसानदायक अनेक प्रकार के रसायनों की खपत अधिक हो रही है। ऐसी स्थिति में प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के साथ ही पर्यावरण के प्रदूषित होने के कारण जैवविविधता में दिनोंदिन कमी आ रही है।

एक ओर बेलगाम प्रदूषण तेजी से जीवन का विनाश कर रहा है, तो दूसरी ओर गरमाती धरती ने नई समस्याएं पैदा कर दी हैं। "इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर (आईयूसीएन)" द्वारा जारी रिपोर्ट में कहा गया है कि विश्व में जीव–जंतुओं की 47,667 जातियों में से एक तिहाई से अधिक जातियों यानी 17,291 जातियों पर विलुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। आईयूसीएन द्वारा जारी की गई लाल सूची (Red Data) के अनुसार स्तनधारी जीव जातियों की 21 प्रतिशत जातियों, उभयचर जीवों की 30 प्रतिशत जातियों और पक्षियों की 12 प्रतिशत जातियां विलुप्त होने के खतरे का सामना कर रही हैं। वनस्पतियों की 70 प्रतिशत जातियों के अलावा ताजे पानी में रहने वाले

सरीसृपों की 37 प्रतिशत जातियों और 1147 प्रकार की मछलियों पर भी विलुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। इसी प्रकार भारत में मिलने वाले अनेक जीव–जैसे गिद्ध, बाघ आदि विलुप्ति की कगार पर हैं। ऐसे जीवों की सूची काफी लंबी है जिसका अस्तित्व खतरे में है।

पृथ्वी की सुंदरता को बनाए रखने में जैवविविधता की महत्वपूर्ण भूमिका है। जैवविविधता पृथ्वी के प्राकृतिक सौंदर्य का एक अंश है। अगर पृथ्वी पर जैवविविधता न हो तो यह पृथ्वी कैसी लगेगी? तब क्या इस पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व बचेगा। शायद नहीं। यह हमारा कर्तव्य ही नहीं बल्कि हमारी आवश्यकता भी है कि हम इस जैवविविधता को बनाए रखें। वैसे जैवविविधता की महत्ता की समझ हमारे पूर्वजों को हमसे अधिक थी। तभी तो प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति, सभी जीवों के प्रति दयाभाव को महत्व देती है। हमारे यहां यह माना जाता है कि जो क्रूरता हम अपने ऊपर नहीं कर सकते वह हमें निम्न स्तर के जीवों पर भी नहीं करनी चाहिए। जैवविविधता के संरक्षण के लिए आज पूरे विश्व को गांधी जी के "जीवन के हर स्वरूप के प्रति सम्मान" वाली भावना को जीवन में उतारने की आवश्यकता है। इन विचारों को अपनाने से ही शायद इस पृथ्वी ग्रह की अनुपम जैवविविधता सुरक्षित रह सकेगी।

प्रकृति में सभी जीवों के विकास का आधार एक–दूसरे का रखरखाव व संरक्षण है। पृथ्वी पर जीवन के विभिन्न रूपों को बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि हम भारतीय संस्कृति में समाहित सभी जीवों के प्रति आदर–भाव रखने वाले विचारों को समझें और जीवन में उन पर अमल करें। वैश्विक स्तर पर दुनिया के सारे देशों को जैवविविधता की समृद्धता के लिए अपने मतभेद और निजी हित भूलकर सहयोग करना होगा। तभी पृथ्वी ग्रह जीवन की विविधता सुंदरता को बनाए रख सकेगा। वास्तव में प्रकृति एवं मनुष्य के बीच घनिष्ठ संबंधों के स्थापित होने पर ही पृथ्वी पर जीवन सैदव विविध रूपों मे मुस्कराता रहेगा और यह पृथ्वी हमेशा सुंदर और जीवनदायी बनी रहेगी।

***

2

जीनोम अनुक्रम के निहितार्थ

डॉ. दिनेश मणि

जीनोम अनुक्रमण संबंधी नवीनतम अनुसंधानों के फलस्वरूप यह आशा की जा रही है कि आने वाले वर्षों में हम अपने जीनोम में फेरबदल करने में इतने समर्थ हो जाएंगे कि मानव का विकासक्रम बहुत सारे ऐसे नए नियमों के अनुरूप निर्धारित होगा जिनका अनुमान डार्विन को भी नहीं रहा होगा।

हमारा देश न केवल जातिगत रूप से भिन्न है वरन् इस देश के लोग एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाने वाले वंशानुगत पदार्थ अर्थात् जीनों के स्तर पर भी भिन्न है। इसका श्रेय भारतीयों और अमरीकी वैज्ञानिकों की संयुक्त टीम की नवीन खोजों को जाता है, जिसमें कोशिकीय और आण्विक जीवन विज्ञान केंद्र (सी.सी. एम.बी.) हैदराबाद के वैज्ञानिकों की मुख्य भूमिका थी, ये अमरीकी शोधकर्ता हॉर्वर्ड मेडिकल स्कूल, हॉर्वर्ड स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ और ब्रॉड इंस्टीट्यूट ऑफ हॉर्वर्ड और एमआईटी से संबंधित हैं।

यदि हम जैवरासायनिक रूप से डीएनए अणु से बने अपने आनुवंशिक पदार्थ को देखें तो कोई भी दो असंबंधित व्यक्ति आश्चर्यजनक रूप से केवल 0.1 प्रतिशत ही भिन्न होते हैं, शेष 99.9 प्रतिशत डीएनए. पूरी तरह समान होता है। क्या विडंबना है कि जीनों के स्तर पर सारी अद्भुत मानवविविधता, केवल इस में निवास करती है अर्थात् हमारे डी.एन.ए. के इसी अतिसूक्ष्म भाग में! डी.एन.ए. का यही भाग लगभग तीस लाख क्षारक युग्मों का बना होता है जो सूचनाओं के प्रचुर स्रोत के संकेतों का भंडार होता है और आज भारत में मानव जाति के ऐतिहासिक उद्गम के पुनर्निर्माण में सहायक है। यह हमारे आनुवंशिक पदार्थ का ही भाग है जो मानव में अनेक आनुवंशिक परिवर्तनों को स्पष्ट रूप से बताता है और जो अन्य लोगों की अपेक्षा कुछ लोगों में विशिष्ट रोगों का भारी खतरा दिखाता है।

किसी भी प्राणी का जीन–सहित संपूर्ण डी.एन.ए जीनोम कहलाता है। जीन डी.एन.ए. का एक छोटा हिस्सा है जो आनुवंशिकता की मूलभूत इकाई है। प्रत्येक जीन में प्रोटीनों के निर्माण के लिए कोड–बद्ध निर्देश होते हैं। ये प्रोटीन ही प्राणी के विशिष्ट गुणों– जैसे त्वचा, का निर्धारण करते हैं। आनुवंशिक सूचना जीनों में एडेनिन (A), थायमीन (T), साइटोसिन (C) और ग्वानिन (G) नामक क्षारकों के रैखिक क्रम में निहित अमीनो अम्ल का संकेत होता है जो प्रोटीन का निर्माण करता है।

डी.एन.ए में न्यूक्लिओटाइडों के क्रम और प्रोटीनों में अमीनों अम्लों के क्रम के संबंध को आनुवंशिक कोड कहा जाता है। डी.एन.ए. के एक टुकड़े में ऐसे क्षारक युग्मों के वास्तविक क्रम का निर्धारण अनुक्रमण अर्थात् सीक्वेन्सिंग कहलाता है।

डी.एन.ए. में एक–दूसरे से लिपटी दो लड़ियां होती हैं जिन्हें न्यूक्लिओटाइड कहा जाता है। इनका ढांचा शर्कराओं और फॉस्फेट समूहों का बना होता है जो ईस्टर बंधों (बॉन्ड) से जुड़ा होता है। ये दोनों

लड़ियां एक–दूसरे के विपरीत दिशा में बंधी होती हैं। न्यूक्लिओटाइड बेस इस प्रकार है– एडेनीन (Adenine) यानी A, ग्वानीन (Guanine) यानी G और थायमीन (Thymine) यानी T। डी.एन.ए. अणु की लड़ी में इन चार बेसों के अनुक्रम में ही आनुवंशिक कोड निहित होता है।

महत्वपूर्ण बात यह है कि A केवल T से और C केवल T से जुड़ता है। इसे पूरक क्षारक बंधन (कांप्लिमेंटरी बेस बाइंडिंग) कहते हैं। प्रत्येक मानव जीनोम में करीब 3 अरब क्षारक युग्म होते हैं। लेकिन हम विभिन्न व्यक्तियों मे जीनोम को डिकोड करके उसे मानव जीनोम घोषित क्यों नहीं कर लेते? समस्या यह है कि पूरी दुनिया में ऐसा कोई एक सार्वभौम आदिप्ररूप जीनोम मानक (यूनिवर्सल प्रोटोटाइप जीनोम स्टैंडर्ड) नहीं है जो दुनिया के हर व्यक्ति पर लागू हो सके, जैसे पूरी दुनिया में धातु का बना एक जैसा अंतरराष्ट्रीय मानक किलोग्राम चलता है। समरूप जुड़वां बच्चों को छोड़कर पूरी दुनिया में कोई एक व्यक्ति दूसरे की समरूप प्रतिलिपि नहीं होता। हम में से प्रत्येक का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है। प्रायः औसतन 1200 क्षारक युग्मों के बाद किन्हीं दो व्यक्तियों का डी.एन.ए. अनुक्रम (सीक्वेन्स) बदलता है। जिनके बीच कोई संबंध नहीं है, ऐसे किन्हीं दो व्यक्तियों में मूलभूत आनुवंशिक स्तर पर करीब 60 लाख अंतर होते हैं। विविधता में एकता का यह शानदार उदाहरण है। हम सभी का आनुवंशिक डी. एन.ए. ब्लू प्रिंट समान है, फिर भी हममें से हर व्यक्ति अनूठा है। इस धरती में मौजूद अरबों लोगों में से प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में अनूठा और अलग है।

विभिन्न भारतीयों में आनुवंशिक परिवर्तनशीलता को सिद्ध करने के लिए किए गए इस अध्ययन में 132 लोगों के जीनोमों के लगभग 5.6 लाख आनुवंशिकी (मार्करों) का विश्लेषण किया गया। इन लोगों को भारत के चिह्नको 13 राज्यों के 25 भिन्न वर्गों से चुना गया था, जिनमें सभी छह भाषा परिवारों, पारंपरिक रूप से ऊपरी और निचली जातियों के साथ–साथ जनजातियों के लोग शामिल थे। 'नेचर' के 24 सितंबर 2009 के अंक में प्रकाशित, लालजी सिंह और डेविड रीच के नेतृत्व में किए गए अध्ययन से एक महत्वपूर्ण रहस्योद्घाटन यह हुआ है कि विभिन्न भारतीय वर्गों में दो भिन्न पैतृक जनसमुदायों का आनुवंशिक पदार्थ होता है– पैतृक उत्तर भारतीय (ऐन्सेस्ट्रल नार्थ इंडियन्स, एएसआई) जो उन पश्चिम यूरेशियाइयों से संबंधित है, जिनसे भारतीयों ने अपनी 40–80 प्रतिशत पैतृकता प्राप्त की और शेष ने पैतृक दक्षिण भारतीयों (ऐन्सेस्ट्रल साउथ इंडियन्स, एएनआई) से, जो भारत के बाहर किसी भी वर्ग से संबंधित नहीं हैं। एएनआई पैतृकता द्रविड़ भाषियों की अपेक्षा इंडो–यूरोपियन में काफी अधिक पाई गई, जिससे पता चलता है कि संभवतः एएसआई की आने वाले संतानें, एएनआई की आने वाली संतानों के साथ मिलने से पहले शायद द्रविड़ भाषा बोलती थीं।

आनुवंशिक चिह्नकों के विश्लेषण के लिए–जो एकल न्यूक्लिओटाइड बहुरूपों के रूप में मिलने वाले आनुवंशिक विभेदों के हिस्से होते हैं, भारत के 25 भिन्न वर्गों के चुने गए लोगों के रक्त के नमूने एकत्रित किए गए। इन नमूनों से डीएनए के निष्कर्षण के बाद, डी. एन.ए के सभी नमूनों को एफीमैट्रिक्स 6.0 क्रम या डीएनए चिप पर वंशप्ररूपित किया गया और 562,123 एसएनपी में आनुवंशिक परिवर्तनों के लिए विश्लेषित किया गया। इसके बाद वैज्ञानिकों ने भिन्न वर्गों के इन लोगों में आनुवंशिक परिवर्तनों के अध्ययन के लिए नवीन सांख्यिकीय अभिगमों का प्रयोग किया। परिष्कृत सॉफ्टवेयर का प्रयोग कर प्रत्येक वर्ग में ऐलील आवृत्ति विभेदन के साथ–साथ अंतःप्रजनन का निर्धारण किया गया। समष्टि वर्गों के बीच, संबंधों को समझने के लिए वैज्ञानिकों ने एक नवीन टूलॅकिट भी विकसित की और इस प्रकार उनके उद्भव के इतिहास का पता लगाया।

आधुनिक जीनोमिक तकनीक के द्वारा इस नए काम से यह पता लगा कि सभी भारतीय वर्ग, पारंपरिक जनजातियों के साथ–साथ वर्णों सहित, एएनआई और एएसआई पैतृक समष्टियों के मिश्रण से जन्मे हैं। मध्य/निम्न वर्ण वर्गों की अपेक्षा पारंपरिक रूप से उच्च वर्णों में एक स्पष्ट उच्च एएनआई पैतृकता पाई गई। सीसीएमबी के एक वरिष्ठ शोध–वैज्ञानिक कुमारासामी थंगराज के अनुसार इस डेटा का प्रयोग करके जनजातियों से वर्णों की पहचान करना असंभव है, जिससे इस विचार को बल मिलता है कि भारतीय समाज के निर्माण के दौरान वर्ण सीधे ही जनजाति जैसे संघटनों से जन्मे।

नए अध्ययन से यह भी पता लगा कि अंडमान द्वीपसमूह के स्वदेशी लोगों का एक छोटा समुदाय (अंडमानी) विशिष्ट रूप से पैतृक दक्षिण भारतीय वंशावली से संबंधित लगता है और उनमें उत्तर भारतीय पैतृकता का सर्वथा अभाव है। इससे निश्चित रूप से पैतृक दक्षिण भारतीयों के इतिहास का झरोखा खुला है जो संभवतः सैकड़ों हजारों साल पहले यूरेशियाइयों से भिन्न हो गए थे। आधुनिक विश्व से दूर कहीं जकड़े हुए जनजातीय समुदायों के आनुवंशिक परिवर्तनों का अध्ययन न केवल हमारे अपने उद्भव के रहस्य खोलने की चाबी हैं बल्कि यह जटिल रोगों के आनुवंशिक आधार को समझने के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। पर्यावरणी संवेदनशील कारणों में से अनेक कारण आधुनिक जीवनशैली से संबंधित हैं, जैसे कि अस्वास्थ्यकर आहार लेना और शारीरिक व्यायाम का अभाव जो अनेक जटिल रोगों को जन्म देता है। जनजातियों में आमतौर पर ऐसा नहीं है। इसीलिए असभ्य, अलग–थलग स्थित जनजातीय समुदायों के अध्ययन से इन बीमारियों के पर्यावरणी संवेदनशील कारकों से आनुवंशिक कारकों में अंतर करना संभव होगा। इस संबंध में, सी.सी.एम.बी. ने भारतीय नृवैज्ञानिक सर्वेक्षण के सहयोग से भारत के जनजातीय और वर्ण समुदायों में मानव आनुवंशिक विविधता के अध्ययन के लिए एक विशाल परियोजना आरंभ की है।

यह भी प्रकाश में आया है कि आधुनिक भारत में अनेक वर्गों की पैतृकता को अल्पसंख्यक लोगों में भी खोजा जा सकता है, जिससे पता चलता है कि ये वर्ग अन्य वर्गों से सजातीय या वर्ग के भीतर ही विवाह के कारण सीमित जीन–प्रवाह सहित वर्षों तक आनुवंशिक रूप से अलग क्यों रहे। ऐसी प्रवर्तक घटनाएं ही–जैसा कि प्रचलित रूप में कहा जाता है, केवल भारतीयों में पाए जाने वाले कुछ आनुवंशिक रोगों के अपवादी रूप की अधिकता का मूल कारण हैं। सी सी एम बी के पूर्व निदेशक लालजी सिंह के अनुसार–जिनके इस क्षेत्र में प्रारंभिक प्रयास प्रशंसनीय रहे हैं, आनुवंशिक रूप से भारत एक विशाल समुदाय नहीं है, बल्कि अनेक प्रवर्तक घटनाओं से जन्मे अनेक छोटे अलग–थलग समुदायों से बना है। जैसे कि फिनलैंडवासी और अशकीनाजी यहूदियों जैसे अन्य मानव समुदायों में अप्रबल आनुवंशिक बीमारियों का आपात बढ़ाने के लिए प्रवर्तक घटनाओं को जाना जाता है, ऐसा ही अनेक वर्गों के लिए भारत में भी है जहां अंतर्जातीय विवाह एक वर्जना है। अनुसंधानकर्ता के अनुसार, प्रवर्तक प्रभाव समरक्तता की अपेक्षा भारत में प्रबल बीमारियों के एक बड़े बोझ के लिए उत्तरदायी हैं। इसे सिद्ध करने के लिए, शोधकर्ताओं के अनुसार अगला कदम होगा प्रबल प्रवर्तक परिघटनाओं से जन्में समुदायों की पहचान करने के लिए भारतीय वर्गों का बाकायदा सर्वेक्षण करना। इससे अनेक सर्वनाशक आनुवंशिक रोगों के लिए उत्तरदायी दोषी जीनों की पहचान करने में सहायता मिलेगी और इस प्रकार प्रभावित और संभावित लोगों को उपयुक्त नैदानिक देखभाल प्रदान करना और प्रभावी उपचार ढूँढ़ना संभव होगा।

इसलिए भारत में सामुदायिक संरचना के इतिहास

का मूल दो पैतृक समुदायों–एएनआई और एएसआई में है और इन समुदायों का प्रबल मिश्रण ही है जो विभिन्न भारतीय वर्गों में सारी आश्चर्यजनक आनुवंशिक परिवर्तनीयता का प्रमाण चिह्न है। पैतृक जीनोमिक अंश की संकल्पनाएं और समूचे भारत में उनके मिश्रण और प्रवर्तक घटनाओं का महत्व इसलिए भी है कि भारतीयों के स्वास्थ्य पर उनका गंभीर प्रभाव है। इस क्षेत्र में आगे अनुसंधान की संभावना उस दिन का अनुमान लगाना है जब इन समुदायों का सम्मिश्रण हुआ होगा। इसके लिए भारतीयों के नमूनों में एनआई पैतृकता के आनुवंशिक विस्तार की सीमा का विस्तृत अध्ययन करना होगा। एक अन्य क्षेत्र–जिसमें अत्यंत विस्तार में अन्वेषण की जरूरत है, वह है एएनआई और एएसआई समुदायों के आपस में मिलने से पहले के इतिहास का अध्ययन करना।

विश्व का दूसरा सबसे अधिक जनसंख्यक देश भारत अपनी विविधता के लिए अद्वितीय रूप से सुविख्यात है, चाहे वह भौगोलिक या जलवायवी विविधता हो, चाहे वह यहां के लोगों के भाषा, धर्म और संस्कृतियों की विविधता हो, या चाहे वह आनुवंशिक विविधता हो, जैसा कि आज स्पष्ट है। जो भी हो हमारी यही विविधता ही है जो हमारी एकता को बल देती है।

मानव जीनोम की सीक्वेन्सिंग करने के लिए उच्च स्तर की गणनक्षमता और अति–आधुनिक मशीनों पर काम करने तथा बड़ी मात्रा में आंकड़ों के विश्लेषण का प्रौद्योगिकीय ज्ञान होना चाहिए। इस काम के लिए बहुत अधिक संसाधन चाहिए और कुछ समय पहले तक इसमें समय भी बहुत अधिक लगता था। इसीलिए दुनिया के ज्यादातर देश अब तक यह काम भी नहीं कर सके। वैज्ञानिक तथा औद्योगिकी अनुसंधान परिषद् (सी.एस.आई.आर.) के अंतर्गत दिल्ली के इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ जीनोमिक्स एंड इन्टिग्रेटिव बायोलॉजी (आईजीआईबी) में कार्यरत भारतीय वैज्ञानिकों ने पिछले दिनों यह कार्य कर दिखाया है।

मानव जीनोम परियोजना अक्टूबर 1990 में शुरू हुई और इस योजना के उद्देश्य में मानव के डी.एन.ए. सहित सभी जीनों की पहचान करना और करीब 3 अरब क्षारक युग्मों का अनुक्रमण (सीक्वेन्सिंग) निर्धारित करना था। प्रारंभ में अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मन और जापान ने अंतर्राष्ट्रीय मानव जीनोम परियोजना कंसोर्टियम गठित किया। सन् 1990 के दशक के उत्तरार्ध में चीन भी इसमें शामिल हो गया और उसने 1% जीनोम की पहचान कर ली। संसाधनों की कमी की वजह से भारत उस समय इस परियोजना में शामिल नहीं हो सका, लेकिन बाद में भारत ने सार्वजनिक रूप से उपलब्ध जीनोम–संबंधी जानकारी के आधार पर द्वितीयक जानकारी (सेंकडेरी इनफॉरमेशन) का विश्लेषण शुरू कर दिया।

अंतरराष्ट्रीय मानव जीनोम अनुक्रमण परियोजना संघ ने मानव जीनोम अनुक्रमण का पहला कच्चा प्रारूप 26 जून 2000 में प्रस्तुत किया। इस प्रारूप में 90 प्रतिशत जीनोम शामिल थे और इसमें 1000 क्षारक युग्मों में एक त्रुटि की संभावना आंकी गई थी। इस प्रारूप में जीनों की 1,50,000 से ज्यादा रिक्तियां थीं और 28 प्रतिशत जीनोम का ही संपूर्ण रूप से आकलन हो सकता था। यह प्रत्येक गुणसूत्र (क्रोमोसोम) पर स्थित 90 प्रतिशत जीनों के एक मार्गदर्शक चित्र के समान था। इसके करीब 3 साल बाद (अप्रैल 2003) में मानव जीन अनुक्रमण का ज्यादा बारीकी से तैयार प्रारूप प्रस्तुत किया गया। इसके जीनों में 400 से भी कम रिक्तियां (गैप) थीं और 90 प्रतिशत जीनोम का संपूर्ण आकलन कर लिया गया था। इस सीक्वेन्सिंग में 10,000 क्षारक युग्मों में केवल एक त्रुटि की संभावना थी। मानव जीनोम का पहला अनुक्रमण तथा विश्लेषण पहली बार सन् 2001 में विज्ञान की पत्रिका 'सेलेरा

जीनोमिक्स' के डॉ. क्रेग वेंटर और उनके सहयोगियों ने प्रकाशित कराया। सार्वजनिक धन से चलाई गई जीनोम परियोजना की ओर से भी उसी दौरान 'नेचर' पत्रिका में इस अनुसंधान का विवरण प्रकाशित कराया गया।

जैव–प्रौद्योगिकी के इतिहास में 9 दिसंबर 2009 का दिन एक महत्वपूर्ण दिवस के रूप में स्मरण किया जाएगा। इस दिन भारत उस वैज्ञानिक क्लब का सदस्य बन गया जिसमें अब तक केवल अमेरिका, ब्रिटेन, चीन, जापान, और दक्षिण कोरिया ही थे। अब तक केवल ये ही देश संपूर्ण मानव जीन संरूप (जीनोम) का आकलन कर सके थे। अब भारत को भी इस उपलब्धि का गौरव हासिल हो गया है।

भारतीय जीनोम विविधता परियोजना के अंतर्गत भारतीय जनसमुदायों की जीन विविधता का ब्यौरा सफलतापूर्वक तैयार कर लिया गया है और भारत अपनी जीन विविधता का संपूर्ण ब्यौरा रखने वाला पहला देश बन गया है। यह बात अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि दुनिया की जनसंख्या का छठवां हिस्सा भारत में रहता है और यहां की जनसंख्या में अनेक नस्लों के गुण घुले–मिले हैं, क्योंकि यहां समय–समय पर अनेक नस्लों के लोग आए और एक–दूसरे से उनका निरंतर संपर्क होता रहा। इस परियोजना से हमें अनेक प्रश्नों के उत्तर मिल सकते हैं, जैसे – कौन–सी जीन–संरचना किस विशिष्ट आनुवंशिक बीमारी/विकृति की कारक है अथवा किस जीन–विकृति की वजह से किसी व्यक्ति–विशेष को किसी रोग से ज्यादा खतरा हो सकता है, अथवा किसी जन–समूह पर किसी नशीले पदार्थ का कैसा असर हो सकता है। अब तक विशिष्ट जीन विकृतियों से जिन रोगों के संबंध में जानकारी है उन पर इस परियोजना में उपलब्ध जानकारी के आधार पर अनुसंधान केंद्रित किया गया। उदाहरण के लिए, आंखों की कुछ बीमारियों, पेशियों से जुड़ी तकलीफों, मधुमेह तथा औषधि उपापचय, शारीरिक प्रतिक्रिया आदि।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि मानव को विशिष्ट बनाने का राज प्रत्येक कोशिका में पाए जाने वाले संपूर्ण डी.एन.ए. में निहित होता है न कि हमारे जीनों में, जिनकी संख्या 20 से 25 हजार है। वैज्ञानिक 98.8% मानव जीनोम को अब तक "जंक" या अक्रिय कहते आए हैं। यह कहा जा सकता है कि मानव अपने जीनोम में पाए जाने वाले जंक डी.एन.ए. की वजह से ही मानव है।

***

3

हीरों का मूल्यांकन एवं व्यापार

रमेश चंद्र

हीरों के माप–तौल की प्राचीन परंपरा

हीरे को हर जगह मीटरी कैरेटों में मापा जाता है। एक मीटरी कैरेट में 200 मि.ग्राम होते हैं। इस प्रकार 5 कैरेटों का 1 ग्राम होता है। हीरे तौलने के लिए कैरेट नामक इकाई का प्रयोग आरंभ से किया जाता रहा है, परंतु इस के बारे में किसी को पक्की जानकारी नहीं है कि इस इकाई का प्रयोग कब, क्यों और कैसे आरंभ हुआ।

प्राचीन काल में मूल्यवान वस्तुएँ तोलने के लिए अलग–अलग देशों में अच्छी प्रकार पके हुए ऐसे अलग–अलग बीजों का प्रयोग किया जाता था, जिनका वजन लगभग बराबर होता था। इंग्लैंड में इस काम के लिए गेहूँ के बीजों का प्रयोग होता था।

'कैरेट' शब्द की व्युत्पत्ति

यह माना जाता है कि कैरब (carob) पेड़ के बीजों का भार अत्यधिक रूप से समान होता है, चाहे वे बीज फलों के किसी भी भाग से क्यों न लिए गए हों। कैरब (सिरेटोनिया सिलिका) के बीज चॉकलेट–भूरे और सपाट नाशपाती से होते हैं। एल.जे. स्पेन्सर के अनुसार इन बीजों का वज़न लगभग 0.197 ग्राम होता है। इसी लेखक ने यूनानी भार सेरेटियम और रोमन भार सिलिका का वज़न 1/144 oz अथवा 3 1/3 ग्राम माना है, जो पुराने इंग्लिश कैरेट के माप 3 1/6 ग्राम से थोड़ा ही ज्यादा है। यह भी माना जाता है कि कैरेट इकाई भार का प्रारंभ प्रवाल (*एरिथ्रीना क्रैलोडेन्ड्रान*) के गुर्दे की आकृति के गुलाबी रंग के बीजों, से हुआ जिनके एक सिरे पर काला दाग होता है। इन बीजों का औसत भार 0.197 ग्राम होता है। फिर भी इन बीजों के अलग–अलग भार में काफी अंतर होता है। किसी ने कोरल की अफ्रीकी जाति कुआरा से कैरट शब्द की व्युत्पत्ति बताई है, परंतु इस मत पर लोग ज्यादा सहमत हैं कि कैरेट शब्द की उत्पत्ति कैरब वृक्ष के बीज से हुई।

प्राचीन कैरेट भार

एक कैरेट में चार डायमंड ग्रेन होते हैं, परंतु संसार के भिन्न–भिन्न भागों में यह अलग–अलग होता है। एक समय वह भी था, जब यह अंतर 0.1885 ग्राम से लेकर 0.2135 ग्राम तक था। इंग्लिश कैरेट लगभग 0.25409 ग्राम का था, परंतु इसका यह मान भी बदलता रहता था। एक चर्च ने कहा कि इंग्लिश कैरेट का वजन 3.1683 ग्रेन है, जो 0.205304 ग्राम को मिलाकर बनता है। यही मान बोर्ड ऑफ ट्रेड के शेरर्ड द्वारा माना गया और माप–तौल अधिनियम 1878, 1888 तथा 1889 की कार्यवाही में वर्णित किया गया। परंतु पुराना इंग्लिश कैरट कभी विधिक माप नहीं माना गया। इसे कैरेट में 1/2 से 1/4 तक के अंश थे तथा इसे 1, 1/2, 1/4, 1/32 के सीरीज के रूप में जाना जाता था। इस इकाई के रूप में बहुत कम जाना जाता था। तीन–चौथाई कैरेट हीरे को 3 ग्रेन वाला हीरा कहा जाता था।

कैरेट भार का मानकीकरण

जब रत्नों का व्यापार अंतरराष्ट्रीय रूप लेने लगा, तो हीरे के तौल को मानक बनाने की आवश्यकता समझी गई। 1871 में पेरिस के रत्न व्यापारियों ने कैरेट का मानक वजन 0.205 ग्राम निर्धारित करने का प्रयास किया। हालांकि यही वजन वहां 1877 में अनुमोदित भी हो गया था, परंतु इसे अंतरराष्ट्रीय मान्यता नहीं मिली। 1907 में पैरिस में ऐसा ही प्रयास फिर हुआ, जब 'कमेटी इन्टरनेशनल डेस पोइड्स ऐट मेजर्स' ने मीटरी कैरेट का वजन 200 मिलिग्राम प्रस्तावित किया। यह वजन पुराने इंग्लिश कैरेट से 2.5% कम था।

पेरिस में 'क्वाटरीम क्रॉन्फरेंस जनरल डेस पोइड्स ऐट मेजर्स' ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करके कुछ देशों को स्वीकृति के लिए भेजा। उस के बाद मीटरी कैरट का वजन पूरे संसार में एक समान हो गया और इसका वजन 200 मि.ग्रा माना जाने लगा।

हीरे के बाट

मीटरी कैरट के बाट 500, 200, 100, 50, 20, 10, 5, 2, 1, 0.5, 0.2, 0.1, 0.0.5, 0.02 और 0.005 कैरट के होते हैं। फिर भी व्यापारिक रीति के अनुसार हीरे को दो दशमलव स्थानों तक ही तोला जाता है और इससे कम वजन को छोड़ दिया जाता है। एक कैरेट से कम भार के हीरे को प्वाइंटों में तोला जाता है। एक कैरेट में सौ प्वाइंट होते हैं इसलिए हीरे मापने की सबसे छोटी इकाई 0.01 कैरेट (एक प्वाइंट) होती है। इसी प्रकार आधे (0.50) कैरट मे 50 प्वाइंट होते हैं। हीरा तोलने की मीटरी इकाइयों के मान निम्नानुसार हैं :

1 ग्राम (1000 मिलिग्राम)	=	5 मीटरी कैरेट
500 मिलिग्राम	=	2.5 मीटरी कैरेट
200 मिलिग्राम	=	1 कैरेट
100 मिलिग्राम (0.10 ग्राम)	=	0.50 कैरेट
50 मिलिग्राम	=	0.25 कैरेट
20 मिलिग्राम	=	0.10 कैरेट
10 मिलिग्राम (0.010 ग्राम)	=	0.05 कैरेट
5 मिलिग्राम	=	0.025 कैरेट
2 मिलिग्राम	=	0.010 कैरेट
1 मिलिग्राम	=	0.005 कैरेट

हीरे का ग्रेन अपने आपमें भार नहीं होता, बल्कि आधारभूत पद्धति के अनुसार उसका मूल्य आँकने के लिए प्रयुक्त होता है। हालाँकि अब संसार भर में हीरे को अधिकांशतः मीटरी कैरेटों में ही तौला जाता है, फिर भी कुछ देशों में इसके भार की प्राचीन इकाइयाँ भी प्रचलित हैं। भारत में कैरेट के अलावा रत्ती, तोला का भी प्रयोग किया जाता है। एक रत्ती 0.91 कैरट के बराबर और एक तोला 58.18 कैरेट के बराबर होता है। एक तोले में 64 रत्तियाँ होती हैं। रत्ती को कैरेटों में बदलने के लिए उसे 10 से गुणा करके 11 से भाग देना होता है।

आभूषणों में जड़े हीरों का भारांकन

आभूषण में जड़े हीरे का वजन केवल अनुमान से आँका जाता है। इसके लिए गेज अथवा गोल या कुशन की आकृति के छेदों वाली धातु या प्लास्टिक की प्लेट का प्रयोग किया जाता है। इन छेदों के व्यास भिन्न–भिन्न साइजों के अच्छे अनुपात में कटे हीरों की पेटि्यों के व्यास के बराबर होते हैं। जब आभूषण में जड़े हीरे का वजन आँकने के लिए ऐसे छेदों वाली प्लेटों का प्रयोग किया जाता है, तो स्टेन्सिल को हीरे के ऊपर रखकर देखा जाता है। हीरा जिस छेद में फिर आ जाता है, उससे उसका वजन आँका जाता है। परंतु इस काम के लिए कैलिपर टाइप के गेज ज्यादा उपयुक्त होते हैं। इस प्रकार के उपकरण से हीरे के गर्डल का व्यास और टेबल से लेकर क्युलेट तक हीरे की गहराई भी मापी जा सकती है।

इसके बाद यह देखा जाता है कि हीरा पतली कटाई का है या मोटी कटाई का। जब साइड से देखने पर हीरे की गहराई कम, परंतु व्यास अधिक हो और वह चपटा दिखाई दे, तो उसे **पतली कटाई का हीरा** कहा जाता है। इसके विपरीत व्यास के साथ–साथ गहराई भी अधिक हो, तो वह **मोटी कटाई का हीरा** कहा जाता है। ये मापन मिलिमीटरों में होते हैं। इन मापनों का मान (अर्थात् मापे गए हीरे का वजन) मापी (गेज) के साथ आई तालिका से जाना जा सकता है। इस मापन से 5% तक की अशुद्धि ही रहती है।

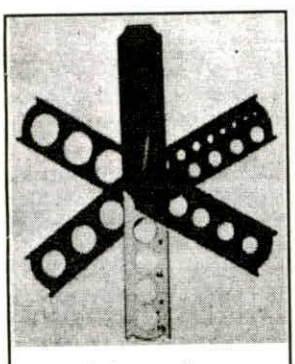

स्टेंसिल गेज

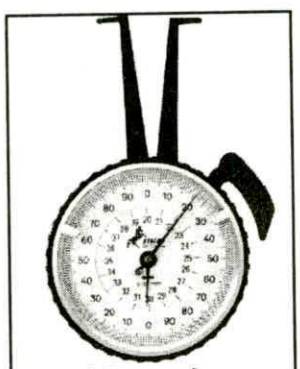

कैलिपर गेज

हीरे को संभालने की युक्तियाँ

हीरे को रखने या उठाने के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार और साइजों की चिमटियों (tweezers) का प्रयोग किया जाता है। कुछ चिमटियाँ ऐसी होती हैं, जिन पर हाथ का दबाव कम होने से भी हीरे नहीं छूटते। चिमटी में एक स्प्रिंग होता है, जिसके प्लंगर को दबाने पर तीन तारों वाली चिमटी बाहर निकलकर हीरे को जकड़ लेती है। हीरे उठाने के लिए छोटी–छोटी बेलचियों का प्रयोग किया जाता है। हीरों को अस्तर लगे पैकेट में रुई के अंदर रखा जाता है, ताकि न तो उनसे पैकेट फटें और न ही उनकी आपस की रगड़ से उनकी फलिकाओं पर खरोंच पड़े। ऐसी खरोंचों को **पेपर वीयरिंग** कहा जाता है।

हीरों के व्यापार का आरंभ

अनगढ़ हीरों का व्यापार प्रारंभ में लंदन में स्थित 'लंदन डायमंड सिंडिकेट' द्वारा किया जाता था। 1933 में दक्षिणी अफ्रीका में 'डायमंड प्रोड्यूसर्स एसोसिएशन' ने हीरे के खनन का काम अपने नियंत्रण में ले लिया और लंदन की 'डायमंड कार्पोरेशन लिमिटेड' नाम की कंपनी, जिसने 1930 में पुरानी सिंडिकेट का कारोबार सँभाला था, हीरे को स्टोर करने का काम करनी लगी। 'डायमंड ट्रेडिंग कंपनी' नाम से तीसरी कंपनी 1933 से अनगढ़ हीरों की बिक्री का काम करने लगी। लंदन अनगढ़ हीरों के व्यापार का केंद्र बना हुआ है।

संसार में हीरे का उत्पादन और खपत

संसार में हीरे की प्रतिवर्ष खपत दस लाख कैरेट (200 किग्रा) से अधिक है। इस खपत की पूर्ति आसानी से हो जाती है। केवल द्वितीय विश्वयुद्ध का समय ही ऐसा आया था, जब हीरे की मांग पूर्ति से अधिक हो गई थी। 1956–1957 में भी कुछ समय के लिए हीरे की कमी महसूस की गई। परंतु उसके बाद संश्लेषित हीरे के विकास और प्राकृतिक हीरे के उत्पादन में बढ़ोतरी से मांग और पूर्ति में संतुलन बना हुआ है।

आस्ट्रेलिया में हीरों का उत्पादन सबसे अधिक होता है। जायर एक अन्य बड़ा उत्पादक देश है। हीरे के अन्य बड़े उत्पादक देश दक्षिणी अफ्रीका, रूस, बोट्सवाना आदि हैं। घाना, अंगोला, सायरा लियोन और अमरीका में भी हीरे पाए गए हैं। बेल्जियम, इजरायल और हांगकांग हीरे के व्यापार के प्रमुख केंद्रों में से हैं।

1954 में भारतीय भू–विज्ञान सर्वेक्षण और भारतीय खान ब्यूरो द्वारा किए गए सर्वेक्षणों से पता चला कि भारत में साधारणतः 100 टन (1000 क्विंटल) चट्टान से औसतन 12.5 कैरेट अर्थात् 2.5 ग्राम हीरे प्राप्त होते हैं।

760 HRD/13—2A

संसार में हीरों का व्यापार

खानों से खुदे, बिना तराशे हीरों को **'डायमंड रफ'** कहा जाता है। इनकी बिक्री लंदन में की जाती है। इस बिक्री के दौरान भिन्न ग्रेडों में बाँटे गए हीरों को आकृति, साइज आदि के हिसाब से अलग–अलग कर लिया जाता है। बिक्री ही यह प्रक्रिया एक प्रथा–सी है।

डायमंड ट्रेडिंग कंपनी जिन हीरों को बेचना चाहती है, उनकी समय–समय पर प्रदर्शनी लगाती रहती है। संसार–भर के व्यापारी लंदन पहुँचकर उन्हें खरीदने का आवेदन करते हैं और वे हीरे कंपनी द्वारा निर्धारित मूल्य पर बेच दिए जाते हैं। कंपनी के हीरों में दक्षिणी अफ्रीकी सरकार, हीरा उत्पादकों, डायमंड कार्पोरेशन आदि के हीरे मिले होते हैं।

संभावित क्रेता को अलग–अलग ग्रेडों, साइजों और आकृतियों के हीरों के पार्सल दिखाए जाते हैं, जिन्हें **'पार्सल आफ गुड्स'** कहा जाता है। इन पार्सलों में ये हीरे सफेद रंग के स्टोन पेपरों और नीले रंग के लिफाफों में पैक किए होते हैं। लंदन उत्तरी गोलार्ध में होने के कारण क्रेता इनकी जाँच उत्तरी प्रकाश में करता है, क्योंकि इस प्रकाश में रंग की जानकारी सबसे अधिक होती है। यदि विक्रय केंद्र दक्षिणी गोलार्ध में स्थित हो, तो इस काम के लिए दक्षिणी प्रकाश बेहतर होता है। क्रेता पार्सल में से हीरे एक–एक करके नहीं चुन सकता, बल्कि उसे पूरा पार्सल ही लेना होता है।

डायमंड ट्रेडिंग कंपनी से इस प्रकार खरीदे गए क्रिस्टलों की फलिकाएँ बनाकर उन्हें जेवरों में प्रयोग कर लिया जाता है।

भारत में हीरों का व्यापार

भारत हीरे के व्यापार के प्रमुख केंद्र के रूप में तेजी से उभर रहा है। हाल ही में भारत से छोटे साइज के कटे हीरों का व्यापार प्रमुख रूप से होने लगा है। यह संसार में हीरे की कटाई का सबसे बड़ा केंद्र है। संसार के 92% अनगढ़ हीरों की कटाई, पालिश तथा परिसज्जा (फिनिशिंग) भारत में ही होती है, जिसमें से 95% काम गुजरात में होता है। गुजरात में सूरत संसार में हीरे काटने और उनको पालिश करने का सबसे बड़ा केंद्र है। सूरत में अधिकांश कार्य बेल्जियम टॉवर नामक बिल्डिंग–जो बेल्जियम स्क्वेयर के पास है, में हीरा बोर्स में होता है। सूरत हीरों के व्यापारियों से भरा पड़ा है। यहाँ लगभग 15000 लोग हीरे का व्यापार करते हैं। भारत में हीरों का लगभग 50000 करोड़ रु. का वार्षिक कारोबार होता है, जिसमें से लगभग 30000 करोड़ रु. का कार्य सूरत मे होता है। गुजरात में हीरों का काम सूरत, जामनगर, अहमदाबाद, भावनगर, पालनपुर, सिद्धपुर आदि से, राजस्थान में जयपुर से, आंध्रप्रदेश में हैदराबाद से और महाराष्ट्र में मुंबई से होता है।

भारत में हीरे के व्यापार में हाल ही में काफी वृद्धि हुई है जो 15% तक आँकी गई है। बेल्जियम के बाद यह तैयार हीरे के दूसरे सबसे बड़े देश के रूप में सामने आ रहा है। भारत में हीरे के व्यापार में वृद्धि इस कारण है कि एंटवर्प (बेल्जियम) में भी हीरों का 70% से अधिक कारोबार भारतीयों के हाथों में है, जो उनकी कटाई और पालिशिंग का काम भारत से कराते हैं। वास्तव में बेल्जियम की हीरे की सबसे बड़ी कंपनी 'रोजी ब्लयू' एक भारतीय की ही है। सूरत के व्यापारी अब हीरों की कटाई और पालिशिंग के अलावा उनकी सेटिंग, डिजाइनिंग और व्यापार का काम भी करने लगे हैं। उन्होंने 'सूरत डायमंड एसोसिएशन' नाम से अपना एक संघ भी बनाया हुआ है। अब भारत के हीरे के व्यापारी अपने हीरों का प्रमाणन एंटवर्प स्थित अंतरराष्ट्रीय भू–वैज्ञानिक संस्थान (इंटरनेशनल जिओलोजिकल इंस्टीच्यूट) जिसका एक केंद्र मुंबई में भी है, से भी कराने लगे हैं और वे अपने हीरों की कटाई भी अब बेल्जियम और इजरायल जैसे देशों से भी कराने लगे

760 HRD/13—2B

हैं। फलस्वरूप भारतीयों हीरों के डिजाइनों, उनकी कटाइयों और फिनिशों में काफी सुधार हुआ है। भारतीय बाजार में अब वैसे बड़े हीरे भी मिलते हैं, जिनके लिए क्रेता कभी विदेशी बाजारों में चक्कर काटते थे।

पहले भारत में हीरे की पुनः बिक्री या खरीद का कोई मापदंड न होने के कारण लोगों की चाहत के बावजूद इसका कोई उठाव न था। विदेशों में सोलिटेयर हीरे प्रमाणपत्र के साथ मिलते थे, जिस कारण हीरे खरीदने के लिए लोग विदेश ही जाते थे। परंतु अब एक करोड़ से भी अधिक कीमत का हीरा अंतरराष्ट्रीय प्रमाणपत्र के साथ भारत में ही मिल जाता है। ऐसे हीरों को अंतरराष्ट्रीय बाजार में कभी भी बेचा जा सकता है। भारत दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया से कोरे हीरे खरीदकर और तराश कर उन्हें अमेरिका, खाड़ी देशों, हांगकांग, बेल्जियम, इजरायल, जापान, सिंगापुर आदि को निर्यात करता है।

भारत में हीरों के नाम

हीरों की गुणता के आधार पर भारत में उन्हें कई नाम दिए गए हैं– अश्मि, नक्षत्र, अरिशिया आदि। अश्मि हीरे की कीमत कम से कम 15000 रु. प्रति कैरेट होती है। नक्षत्र हीरे की कीमत कम से कम तीस हजार रुपए और अरिशिया ग्रेड के प्रीमियम सॉलिटेयर हीरे की कीमत दो लाख रुपए प्रति कैरेट होती है। **अरिशिया** तीन कैरट तक के हीरों के गहने का ब्रांड होता है। इस प्रकार एक ग्राम अश्मि हीरे की कीमत लगभग पचहत्तर हजार रुपए, नक्षत्र हीरे की कीमत कम से कम डेढ़ लाख रुपए और अरीशिया ग्रेड के प्रीमियम सॉलिटेयर हीरे की कीमत दस लाख रुपए होती है। यूँ सॉलिटेयर से तात्पर्य होता है एक मणि या नग वाला आभूषण, परंतु हीरों के मामलों में सॉलिटेयर हीरे किसी आभूषण में नहीं जड़े होते, बल्कि ये खुले नायाब पीस होते हैं। इन्हें केवल ग्राम के पाँचवें हिस्से (कैरेट) और कैरेट के सौवे हिस्से (प्वाइंट) में तौला जाता है। एक ग्राम तक का हीरा ही काफी बड़ा माना जाता है। 3 कैरेट तक का सॉलिटेयर हीरा वंशानुगत चलता है और बहुत कम लोग इसे एक बार खरीदकर अपने जीवन काल में बेचते हैं।

हीरों के मामले में दस ग्राम तक का कारोबार बहुत ज्यादा माना जाता है।

***

4

परमाणु क्रमांक 8 के लिए नाम की खोज

डॉ. जितेंद्र कुमार गुप्त

परमाणु क्रमांक 8 के लिए नाम की खोज की समस्या के चार पहलू हैं –

1. आवर्तसारणी के आठवें तत्व को एक गलत नाम दिया गया है– 'ऑक्सीजन' जिसका अर्थ है अम्ल उत्पादक [acid-producer]। 'ऑक्सीजन' नाम से ऐसा अर्थ निकलता है कि यह तत्व अम्लों का आवश्यक भाग है, जबकि ऐसा नहीं है। यह तत्व अम्लों का आवश्यक भाग नहीं है इसलिए इनका नाम बदला जा सकता है।

2. ऑक्सीजन नाम का प्रथम अक्षर 'ओ (O)' इस परमाणु क्रमांक 8 वाले तत्व के रासायनिक संकेत के रूप को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार कर प्रचलित कर दिया गया है। इसलिए किसी अन्य अक्षर से प्रारंभ होने वाला नया नाम रखने से दिक्कत खड़ी हो सकती है।

3. ऑक्सीजन को 'प्राणवायु' कहने पर भी आपत्ति है क्योंकि आयुर्वेद में तंत्रिकाओं के अंदर बनने वाले विद्युत् आवेग–संवेगों को 'वायु' और 'मस्तिष्कांतर्गत बहने वाली विद्युत्–धारा' को 'प्राणवायु' कहा गया है। यदि ऑक्सीजन को भी 'प्राणवायु' नाम देते हैं तो आयुर्वेद के अध्ययन में भ्रम की स्थिति उत्पन्न होगी। वैसे भी संकेत 'O' के अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रचलन में होने के कारण 'ऑक्सीजन' का नाम बदलकर 'प्राणवायु' रखा जाना संभव नहीं है।

4. ऑक्सीजन का नया नाम इसके अन्य गुणों के आधार पर खोजा जाना चाहिए।

समस्या की पृष्ठभूमि

आवर्त सारणी के आठवें तत्व का जो 'ऑक्सीजन' नाम रखा गया है वह अपने आप में त्रुटिपूर्ण लगता है और हम एक लंबे समय से इसी नाम का प्रयोग करते आ रहे हैं।

दरअसल जिस समय वैज्ञानिक प्रीस्टले ने इस गैसीय तत्व की खोज की उस समय सल्फ्यूरिक अम्ल (H_2SO_4) और नाइट्रिक अम्ल (HNO_3) जैसे ही अम्ल ज्ञात थे जिनमें यह तत्व विद्यमान था। अतः यह धारणा बना ली गई कि यह तत्व प्रत्येक अम्ल का आवश्यक घटक है और इसके बिना किसी अम्ल का संश्लेषण संभव नहीं है। अतः इस तत्व को 'ऑक्सीजन' अर्थात् 'अम्ल–उत्पादक' नाम दे दिया गया। 'ऑक्सीजन' शब्द ग्रीक भाषा 'ऑक्सीनीन (Oxynein)' और 'जनरेटर (generater)' शब्दों को मिलकर बनाया गया है। 'ऑक्सीनीन (oxynein)' से 'ऑक्सी (oxy)' और जनरेटर से 'जन (gen)' अंश लेकर 'ऑक्सीजन (oxygen)' शब्द बनाया गया जिसका अर्थ निकलता है– 'अम्ल–उत्पादक' (oxy=oxynein=acid, gen= producer)। परंतु ऑक्सीजन तत्व के अम्ल–उत्पादक होने की अवधारणा रसायन–विज्ञान में अधिक दिनों तक नहीं चल सकी। कालांतर में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल एसिड (HCI), हाइड्रोब्रोमिक अम्ल (HBr), हाइड्रो-आयोडिक (HI) और हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल (HF) जैसे अनेक अम्ल खोज लिए गए जिनमें तथाकथित ऑक्सीजन

तत्व का नामोनिशान नहीं था। ऐसे अम्लों की खोज के बाद यह सिद्ध हो गया कि तथाकथित ऑक्सीजन तत्व सभी अम्लों का आवश्यक घटक नहीं है। अतः इसे अम्लों का आवश्यक घटक या 'अम्ल–उत्पादक' (अर्थात् 'ऑक्सीजन') कहना उचित नहीं हागा। इस प्रकार परमाणु क्रमांक 8 वाले इस तत्व के लिए तथाकथित 'ऑक्सीजन' नाम गलत हो गया। परंतु किसी वैज्ञानिक ने इसका नाम बदलने की दिशा में कोई प्रयास नहीं किया और वैज्ञानिकगण यही नाम चलाते रहे। हमारे अपने देश के विद्वद्जनों की स्थिति भी कम विडंबनापूर्ण नहीं रही, जिन्होंने बिना विचार किए 'ऑक्सीजन' के लिए 'प्राणवायु' शब्द का वरण कर लिया, जबकि 'प्राणवायु' शब्द हमारे देश भारत में सहस्त्रों वर्ष पूर्व से तंत्रिकार्यिकी (Neurophysiology)' के अंतर्गत एक अलग ही अर्थ में प्रयुक्त होता आ रहा था। हमारे प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में क्रियाशील मस्तिष्क के अंदर बहने वाली विद्युत धाराओं को 'प्राणवायु' कहा गया है। अब इसे हमारी भूल कहें या प्राचीन ज्ञान–विज्ञान के साथ समन्वय का अभाव, कि जो शब्द हमारे देश की इतनी महत्वपूर्ण विज्ञान–शाखा का आधारभूत शब्द रहा हो उसे हमने इतने हल्के अर्थ में किसी गैसीय तत्व के नामकरण में प्रयोग किया। ऐसा करके हमने न सिर्फ अपने विज्ञान के अध्ययन में भ्रम की स्थिति उत्पन्न कर ली, बल्कि अपने ही प्राचीन ज्ञान–विज्ञान से अपरिचित होने का आभास स्वयं किया।

आयुर्वेद में 'प्राणवायु' शब्द किसी गैसीय तत्व के लिए नहीं बल्कि केंद्रीय तंत्रिका तंत्र अर्थात् मस्तिष्क में बहने वाली विद्युत् धारा के लिए प्रयुक्त हुआ है। चिकित्साविज्ञान के सबसे प्राचीन ग्रंथ अग्निवेश तंत्र, जोकि मूल चरक संहिता के नाम से विश्व विख्यात है, के सत्रहवें सूत्र में महर्षि अग्निवेश ने लिखा है "सर्वाहि चेष्टा वातेन, सप्राणः प्राणिनां स्मृतः" (चरक सूत्र-17) जिसका अर्थ यह है कि प्राणियों के शरीर के किसी भी अंग में विक्षेप[3] या विक्षेप की चेष्टा या किसी अन्य प्रकार का कोई कार्य या कार्य चेष्टा 'वात' अर्थात् 'विद्युत् धारा' के द्वारा ही संपन्न होती है[1] और यह विद्युत् धारा प्राणियों के स्मृति केंद्रों अर्थात् केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (**मस्तिष्क व मेरुरज्जु**) से तंत्रिकाओं में संचरित होती हुई विभिन्न अंगों तक पहुँचती है। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि मस्तिष्क व मेरुरज्जु के समस्त आदेश 'वात' अर्थात् 'विद्युत् धारा' के रूप में शरीर के विभिन्न अंगों तक पहुँचते हैं। आयुर्वेद के इस 'सर्वाहि चेष्टा वातेन' के सिद्धांत की पुष्टि आधुनिक विज्ञान भी करता है। आधुनिक विज्ञान भी यही कहता है कि मस्तिष्क और मेरुरज्जु के सभी आदेश विद्युत् तरंगों के रूप में चलते हैं। सिर्फ आदेश ही नहीं विभिन्न अंगों से मस्तिष्क व मेरुरज्जु तक पहुँचने वाली सूचनाएँ भी विद्युत् धारा के रूप में ही आती हैं जिनका विश्लेषण मस्तिष्क व मेरुरज्जु द्वारा करके उचित आदेश दिया जाता है।

'वात' और 'वायु' दोनों ही शब्द 'विद्युत्' के पर्यायवाची हैं और आयुर्वेद में 'वात' व 'वायु' दोनों शब्दों का प्रयोग विद्युत् के पर्यायवाची के रूप में हुआ है। 'चरक संहिता' के बारहवें सूत्र में इसी विद्युत् धारा के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा गया है वायुस्तंत्र यंत्रधरः प्रवर्तकश्चेष्टा-नामुच्चावचानाम्। (चरक सूत्र 12)[2], जिसका अर्थ इस प्रकार है– "शरीर रूपी यंत्र की संचालक शक्ति वायु है जो समस्त चेष्टाओं (अंगों की गतियों) की प्रवर्तक है, और उच्चावचन विद्युत् धारा का विशिष्ट गुण है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि उच्चावचन अर्थात् फ़लक्चुएशन विद्युत् धारा का विशिष्ट गुण है। बल्कि यों कहें कि इस भौतिक जगत् में यह विद्युत् ही है जिसमें उच्चावचन का गुण पाया जाता है। कम से कम द्रव या किसी गैसीय पदार्थ से तो उच्चावचन या फ्लक्चुएशन

जैसे शब्दों का दूर तक कोई संबंध नहीं हैं

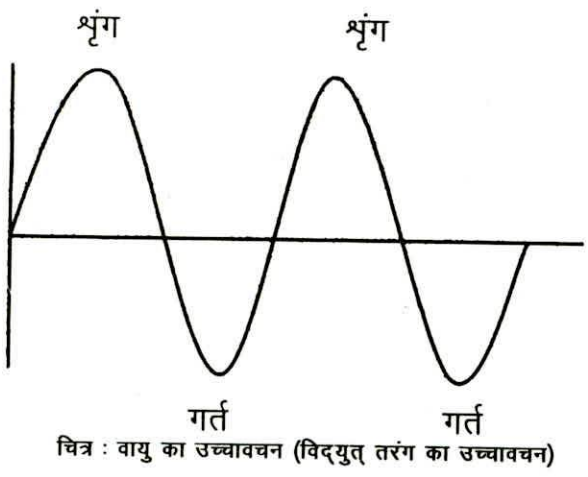

चित्र : वायु का उच्चावचन (विद्युत् तरंग का उच्चावचन)

अब प्रश्न यह उठता है कि जब हमारे आयुर्वेद-मनीषियों ने जिस वायु तत्व की व्याख्या इसके उच्चावचन के गुण अर्थात् तरंग रूप तक कर दी हो और फिर भी हम वायु तत्व को हवा या गैस मानें तो इसे हमारी बौद्धिक तथा तार्किक विपन्नता ही कहा जाएगा। 'हवा' और 'विद्युत्' दोनों ही 'वायु' शब्द के पर्यायवाची हैं। परंतु हमारे आयुर्वेद मनीषियों ने किस अर्थ में 'वायु' शब्द का प्रयोग किया है, यह समझे बिना यदि हम 'वायु' को 'हवा' और 'प्राणवायु' को 'ऑक्सीजन' मान बैठेंगे तो यह हमारे आयुर्वेद मनीषियों के साथ नहीं, संपूर्ण विज्ञान-जगत् के साथ घोर अन्याय होगा। आयुर्वेद में सिर्फ मस्तिष्क में चलने वाली विद्युत् धारा को ही प्राणवायु कहा गया है। अन्य अंगों में बहने वाले विद्युत् आवेगों को 'वायु' के अलग-अलग वर्गों में वर्गीकृत किया गया है।[4] यथा– वेगस तंत्रिका फुफ्फुस तथा कंठ शाखा में बहने वाले विद्युत् आवेग को समानवायु; प्रमस्तिष्क गुह्य (सेरिब्रोप्युडेन्डल) नर्व मार्ग में बहने वाले विद्युत् आवेग को अपानवायु तथा स्वचालित तंत्रिका-तंत्र, अधश्चेतक (हाइपोथैलेमस) माँसपेशियों में बहने वाले विद्युत् आवेग को व्यानवायु कहा गया है। इस प्रकार से वायु को पाँच वर्गों में वर्गीकृत किया गया है।[4] सिर्फ मस्तिष्क के विभिन्न भागों में संचरित होने वाली विद्युत् धारा, जो मस्तिष्क की क्रियाशीलता का आधार है, को ही आयुर्वेद में 'प्राणवायु' कहा गया है। तंत्रिका-तंत्र (नर्वस सिस्टम) संबंधी समस्त रोगों को आयुर्वेद में 'वायुरोग' के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है। अतः ऐसी स्थिति में 'ऑक्सीजन' को प्राणवायु कहना न सिर्फ आयुर्वेद के अध्ययन में भ्रमोत्पादक बनेगा, बल्कि हमें आयर्वुेद से अनभिज्ञ भी ठहराता है। इसलिए आवर्त सारणी के परमाणु क्रमांक 8 वाले इस तत्व के लिए न तो ऑक्सीजन नाम उपुयक्त है और न ही प्राणवायु। अतः इसके लिए कोई अन्य नाम खोजना जाना चाहिए।

परिकल्पना : परमाणु क्रमांक 8 वाला यह तत्व (तथाकथित 'ऑक्सीजन' तत्व) दहन क्रिया का सहायक तत्व माना जाता है। क्या इसके 'दहन-सहायक गुण धर्म को इसके नामकरण का आधार बनाया जा सकता है?"

प्रयोगीकरण : प्रयोगीकरण की प्रक्रिया निम्न चरणों से गुजरीः–

1. दहन एवं इस क्रिया से जुड़े शब्दों की विभिन्न भाषाओं में खोज।
2. खोजे गए शब्दों में से 'ओ (O) से प्रारंभ होने वाले शब्दों का पृथक् वर्गीकरण।
3. 'ऊर्जा (Oorja)' को 'Urja' लिखे जाने की संभावना के चलते 'ऊर्जा (Oorja)' शब्द का त्याग और 'ओज (Oj)' शब्द का चयन।
4. 'ओज' शब्द के लिए 'उत्पादक' अर्थ वाले प्रत्यय की खोज {संस्कृत शब्द के साथ संस्कृत शब्द की ही संधि संभव– (संस्कृत भाषा का नियम)}।
5. ग्रीक प्रत्यय 'gen' के लिए संस्कृत में प्रत्यय की खोज।
6. संस्कृत भाषा में भी 'जन' (jana)' परसर्ग उपलब्ध

और उसका अर्थ भी ग्रीक प्रत्यय 'gen' के समान अर्थात, उत्पादक है।

7. 'ओज' के साथ 'जन' प्रत्यय जोड़कर और ज की पुनरावृत्ति को बचाते हुए 'ओज्जन' शब्द का निर्माण और ऑक्सीजन के स्थान पर इसका परीक्षण।

निष्कर्ष

परमाणु क्रमांक 8 वाले तत्व के लिए 'ऑक्सीजन' के बजाए संस्कृत नाम 'ओज्जन' इसके गुणों के अनुरूप है। इसमें किसी प्रकार का विरोधाभास नहीं है और इस नाम को अपनाने के लिए इसके प्रचलित संकेत (O) को बदलने की भी आवश्यकता नहीं है। इसलिए मैं जितेंद्र कुमार गुप्त इस परमाणु क्रमांक 8 वाले तत्व को 'ओज्जन' नाम देता हूँ।

संदर्भः

1. चरक संहिता, सूत्र स्थानम्, सूत्र सं. 17
2. चरक संहिता, सूत्र स्थानम्, सूत्र सं. 12
3. सुश्रुत संहिता, सूत्र स्थानम्, सूत्र सं. 2
4. वृहदारण्यकोपनिषद,–3.9.26।

***

विज्ञान समाचार

बेफिक्र होकर खाएं आइसक्रीम

दीपक कोहली

अब मोटापा और बीमारियों का डर छोड़िए और बेफिक्र होकर आइसक्रीम खाइए। मिसौरी विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं ने कहा कि आइसक्रीम में रेशे (फाइबर) प्रति–ऑक्सीकारक (ऐन्टी ऑक्सीडन्ट) और प्रजैविक (प्रोबायोटिक्स) जैसे पोषक तत्व मिलाने से उसके नुकसान से बचा जा सकता है। इससे लोगों को दोहरा लाभ होगा। वे आइसक्रीम का आनंद भी ले सकेंगे और उन्हें पोषक तत्व भी मिलेंगे। आइसक्रीम में फाइबर के मिश्रण से पांचन–तंत्र मजबूत रहेगा। इसके अलावा प्रति–आक्सीकारक तथा प्रजैविक पदार्थों के मिलाने से शरीर में प्रतिरोधक क्षमता एवं अवशोषण शक्ति में भी वृद्धि होगी। मुख्य शोधकर्ता प्रोफेसर इनगोल्फ ग्रुएन के अनुसार चॉकलेटी आइसक्रीम में इन तत्वों का मिश्रण करना आसान है। ग्रुएन की टीम बेरी और अंगूर के निसत्व को भी आइसक्रीम में मिश्रित करने के बारे में सोच रही है। ऐसी आइसक्रीम जल्दी ही बाजार में होगी।

5

कुक्कुट पालन

डॉ. सी.पी. सिंह

भारत ही नहीं, विश्व के सभी देशों के लिए पशुपालन का अत्यधिक महत्व है। यह महत्व सिर्फ आर्थिक ही नहीं, बल्कि पर्यावरण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। कुक्कुट के अंतर्गत, मुर्गी, बत्तख, पीरु (टर्की), राजहंस (गूज) आदि को पाला जाता है जिनसे अंडे व मांस प्राप्त होते हैं। मुर्गी का अंडा एक पौष्टिक आहार माना जाता है। ये शरीर के तंतु, माँस–पेशियों, रक्त, हड्डी के तंतु, त्वचा, बाल आदि का निर्माण करते हैं। कोशिका के समस्त तत्वों को प्रोटीन ही बनाती है। इसलिए बढ़ते शिशुओं, गर्भवती महिलाओं, बच्चों के लिए प्रोटीन लेना अति–आवश्यक है, जिसे मांस व अंडे से प्रचुर मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है।

वास्तव में कुक्कुट पालन उद्योग का 95 प्रतिशत भाग मुर्गी से ही संबंधित है। वर्तमान में कुक्कट पालन काफी लोकप्रिय होता जा रहा है। यह कम पूंजी में अधिक आय का स्रोत ही नहीं, बल्कि इससे बड़ी संख्या में रोजगार का सृजन भी होता है। आज इसमें अनेक विकसित जातियों की मुर्गियों को वैज्ञानिक पद्धति से पाला जा रहा है। भारत सरकार व राज्य सरकारें कुक्कट–पालन हेतु विशेष आर्थिक सहायता उपलब्ध करवा रही हैं। विश्वस्तर पर यदि आकलन किया जाए तो संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति व्यक्ति 350 प्रति वर्ष अंडे, डेनमार्क में 400 अंडे, यूनाइटेड किंग्डम में 275 अंडे की खपत होती है। इसी प्रकार मुर्गी के मांस की खपत भारत में 200 ग्राम प्रति व्यक्ति है, जबकि विकसित देशों में 20 किग्रा. तक है।

कुक्कट पालन हेतु उचित नस्ल की मुर्गियों का पालन किया जाता है जिससे कि समुचित मात्रा में अंडे व मांस प्राप्त हो सके।

मुर्गियों की कुछ प्रमुख नस्लें एवं उनकी विशेषताएं:–

अ. अमरिकी नस्लें

(1) *रोड आइलैन्ड रेड* :– इस नस्ल का मानक भार नर एवं मादा में लगभग 3.5 किग्रा. के करीब होता है। यह मुर्गी मांस व अंडे दोनों के उपयोगी है। इसके कई रंग होते हैं :. जैसे गहरा लाला, श्वेत लाल आदि।

(2) *प्लामाउथ रॉक* :– यह सर्वाधिक प्रचलित नस्ल है। इसका शरीर लंबा और आकार चौड़ा होता है जिसको मांस के लिए काफी पसंद किया जाता है।

(3) *न्यूहैम्पशायर* :– यह नस्ल रोड आइलैन्ड रेड़ से विकसित की गई नस्ल है। इसका विकास तेज गति से होता है तथा अंडे का आकार भी बड़ा होता है।

ब. एशियाई नस्लें

(1) *लैंग शैन* :– यह मुर्गी की सबसे सुंदर नस्ल है। इसके शरीर का भार लगभग 4 किग्रा. के करीब हो सकता है। पूँछ के पंख बड़े होते हैं। यह मुख्यतः सफेद और काली रंग में पाई जाती है।

(2) *ब्रामा :–* इसका मूल स्थान ब्रह्मपुत्र घाटी है। यह बड़े आकार की अत्यधिक पंख युक्त आनुपातिक शरीर वाली मुर्गी होती है। मटर कंकत या मटर जैसी कलगी इसकी प्रमुख विशेषता है।

ग. देशी नस्लें

(1) *असली :–* यह एक लड़ाकू किस्म की मुर्गी है। इनकी कलगी मटर जैसे छोटे आकार की होती है। गरदन लंबी, शरीर गोल तथा छोटा, चौड़ी छाती इसकी प्रमुख विशेषताएं हैं। इसका वजन लगभग 3 किग्रा. से 3.5 किग्रा. के बीच होता है।

(2) *बसरा या बुसरा :–* इस नस्ल की मुर्गियों का आकार छोटा होता है। यह हल्के पंखों वाली होती हैं और विभिन्न रंगों में पाई जाती हैं। यह बहुत कम अंडे देती है किंतु मांस के हिसाब से यह अत्यधिक महत्वपूर्ण नस्ल है।

(3) *चटगौंग :–* यह मुर्गी मलय के नाम से भी जानी जाती है। इसका आकार बड़ा होता है। गरदन लंबी एवं चोंच पीली होती है। अंडे का आकार बड़ा होता है।

(4) *करकनाथ :–* यह मुर्गी मुख्यतः पश्चिमी म. प्र. में झाबुआ और धार जिले के जनपदीय बाहुल क्षेत्र में पाई जाती है। इसके अंडे हल्के भूरे रंग के होते हैं तथा मांस स्वादिष्ट होता है।

मुर्गियों मे होने वाली प्रमुख बीमारियां, लक्षण एवं उपचारः–

1. *रानीखेत रोग (न्यूकैसल रोग) :–* यह रोग मुर्गियों में मुख्यतः पैरामिक्सोवाइरस की वजह से होता है।

रोग के लक्षण :

यह एक संक्रामक जानलेवा बीमारी है। इस बीमारी में सर्वप्रथम मुर्गियों को सर्दी–जुकाम हो जाता है और साथ मे सांस लेने में तकलीफ होती है। धीरे–धीरे शरीर में लकवे के लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

उपचार :

(i) चूजों के एक दिन का हो जाने पर टीका लगवाना चाहिए।

(ii) फार्म की उचित सफाई करनी चाहिए। साथ ही पानी में पोटेशियम परमैंग्नेट मिलाकर प्रयोग करना चाहिए।

2. *चेचक कुक्कुट :–* यह रोग एवीपॉक्स वाइरस की वजह से होता है।

रोग के लक्षण :

मुर्गियों में शरीर के पंख-रहित अंगों पर छाले पड़ जाते हैं। आँखों के चारों ओर छाले पड़ जाने के कारण आँखें बंद हो जाती है और भारी संख्या में मुर्गियों की मृत्यु हो जाती है।

उपचार :

(i) छालों पर टिंक्चर आयोडीन या पोटेशियम परमैंग्नेट का प्रयोग करना चाहिए। साथ ही टीका भी लगवा देना चाहिए।

3. *पक्षि–मस्तिष्क सुषुम्मनाशोथ (एवियन एन्सेफैलोमाइलाइटिस) :–* यह रोग पिकानाविर्डी एन्टेरोवाइरस की वजह से होता है।

रोग के लक्षण : पैदा होने के बाद प्रथम सप्ताह में इस बीमारी के लक्षण दिखाई पड़ते हैं। सिर, गले, तथा पूँछ में तीव्र कंपन पाया जाता है। साथ ही लकवा होने की तीव्र संभावना बढ़ जाती है।

उपचार :

यौवनारंभ के पूर्व टीके लगवा देने चाहिए, क्योंकि यह बीमारी जनक मुर्गे द्वारा फैलती है।

4. *संक्रामक लैरिंगो टेकाइटिस :* कुक्कट परिसर्प एलर्जी विषाणु।

रोग के लक्षण :

यह बीमारी मुख्यतः 5–10 महीने के चूजों को प्रभावित करने वाला श्वास रोग है। इस बीमारी में चूजों को साँस लेने में कठिनाई के साथ–साथ उनमें कफ भी बढ़ जाता है।

उपचार :

(i) सावधानी हेतु टीके लगवा देने चाहिए।

(ii) बीमार चूजे को अलग रखना चाहिए।

5. *कुक्कट हैजा :* यह रोग बैक्टीरिया पाश्चुरैला ए.वी. सेस्टिका की वजह से होता है।

रोग के लक्षण :

इस रोग के लक्षण में टांगें सूज जाना, तेज बुखार आना, चोंच से तरल पदार्थ का निकलना, तत्पश्चात् मृत्यु शामिल है।

उपचार : मुर्गियों को समय पर टीके लगवाने चाहिए तथा साथ ही साथ स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

यदि समय पर पशुचिकित्सक की सलाह पर उचित टीकाकरण एवं साफ–सफाई का ध्यान रखा जाए तो उपरोक्त बीमारियां से निजात मिल सकती है और कुक्कट–पालन के क्षेत्र में अच्छी सफलता प्राप्त की जा सकती है।

***

विज्ञान समाचार

जीव-जंतुओ की एक तिहाई जातियां हो जाएगी विलुप्त

दीपक कोहली

अंतरराष्ट्रीय जैव–विविधता के एक अध्ययन में कहा गया है कि विश्व में जीव–जंतुओं की कुल 47,677 जातियों में से एक तिहाई (17,291) जातियों पर विलुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। 'इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजरवेशन ऑफ नेचर (आईयूसीएन) की विलुप्त होने की कगार पर खड़ी जातियों की हालिया 'खतरे की सूची' के अनुसार स्तनधारी जीव–जंतुओं की 21, उभयचर जीवों की 30 और पक्षियों की 12 जातियां विलुप्त होने के खतरे का सामना कर रही हैं। वनस्पतियों की 70 फीसदी जातियों के अलावा, ताजे पानी में रहने वाले सरीसृपों की 37 फीसदी जातियां एवं अकशेरुकी (मेरुदंड रहित) जंतु की 35 फीसदी जातियों पर भी विलुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। आई यूसीएन के जैव–विविधता संरक्षण समूह के निदेशक 'जेन स्मार्ट' के अनुसार भविष्य में यह संकट और भी गहरा सकता है जोकि जैव–परिस्थितिकी के लिए खतरे की घंटी है।

6

गन्ने के साथ सह–फसली खेती

आर.एस. सेंगर, रेशू चौधरी एवं अशोक सेलवटकर

गन्ने की दो पंक्तियों के बीच की खाली भूमि दूसरी भूमि में उगाकर प्रति इकाई क्षेत्रफल अधिक लाभ लेने की विधि अंतःफसली खेती कहलाती है। इससे न केवल प्राकृतिक संसाधनों–जैसे कि भूमि, सिंचाई के लिए पानी, प्रयुक्त खाद एवं उर्वरकों का बेहतर उपयोग होता है, वरन् एक ही समय में गन्ने के साथ–साथ घरेलू आवश्यकता के लिए अन्य फसलें भी मिल जाती हैं जिससे कृषकों को प्रति इकाई लाभ अधिक मिलता है तथा घरेलू आवश्यकता की पूर्ति भी हो जाती है। जैसा कि कृषक भाई जानते हैं कि गन्ने को 60–90 सें. मी. की दूरी पर पंक्तियों में बोया जाता है तथा इसे अंकुरित होने में लगभग डेढ़ से दो माह तथा तल–शाख़न में डेढ़ से दो माह का समय लगता है। इस प्रकार फसल को दो पंक्तियों के बीच के खाली स्थान को उगाने में लगभग तीन से चार माह लग जाते हैं और इस अवधि में इस खाली स्थान का प्रयोग कर अन्य फसलें आसानी से ली जा सकती हैं जिससे किसानों को अतिरिक्त आय एवं रोजगार के साथ–साथ खरपतवार को नियंत्रित करने में भी सुविधा होती है। अंतः फसल के रूप में दलहनी फसलों का चयन करने से वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण भी मृदा में होता है। वैज्ञानिक शोधों में दलहनी, तिलहनी अनाज, मसाले आदि की अनेक फसलों को अंतःफसली के रूप में उगाना संभव हो सका है।

सह–फसली खेती से तात्पर्य

जब दो या दो से अधिक फसलों को एक ही खेत, एक ही ऋतु में, पंक्तियों के बीच एक निश्चित अनुपात में उगाया जाता है तो इसे सह–फसली खेती कहते हैं, अर्थात् सरल बोलचाल की भाषा में विभिन्न फसलों को एक ही खेत में, एक ही साथ कतारों में उगाना ही सह–फसली खेती है।

गन्ने के साथ सह–फसली खेती की आवश्यकता क्यों?

गन्ने की बुआई–उपरांत अंकुरण, स्थापन और वानस्पतिक वृद्धि पहले 4–5 माह तक काफी धीरे–धीरे होती है। जिसके कारण कतारों के अंतःस्थानों में अंतःफसल उगाने की पर्याप्त संभावना होती है।

सह–फसली खेती से दिन–प्रतिदिन बढ़ती हुई जनसंख्या और घटती हुई प्रति व्यक्ति भूमि के लिए अनेक प्रकार के खाद्यान्नों की पूर्ति, मृदा उर्वरता और उत्पादकता की स्थिरता बनाए रखने तथा किसानों के जीवन–यापन के साथ–साथ विपदाओं से उनकी आर्थिक फसलों की हानि को काम करना इत्यादि समस्याओं का समाधान संभव है:

- गन्ना एक लंबी अवधि की फसल है, जिसे तैयार होने में कम से कम एक वर्ष का समय लग जाता है। परिणामस्वरूप किसान को एकल खेती के अंतर्गत एक वर्ष में एक खेत से एक ही फसल मिल पाती है जिसके कारण खाद्यान्न फसलों, जैसे गेहूं, मसूर, तोरिया, इत्यादि की सह–फसली खेती करने से कुछ खाद्यान्न फसलों की भी पूर्ति होती रहती है।
- भारतीय कृषि में फसलों पर प्राकृतिक विपदाओं –जैसे कीटों और रोगों, महामारी, सूखा एवं बाढ़ इत्यादि का दुष्प्रभाव अधिक पड़ता है, जिससे किसानों को अधिक हानि उठानी पड़ती है। लेकिन सह–फसली खेती अपनाने से प्राकृतिक विपदा से हुई हानि को कम किया जा सकता है क्योंकि सह–फसली खेती में एक फसल के नष्ट हो जाने पर दूसरी फसलों की उपज से कुछ आय प्राप्त हो जाती है।
- एक ही खेत में बार–बार एक ही प्रकार की फसल के उगाने से मृदा की उर्वरता तथा उत्पादन शक्ति कम होने लगती है, क्योंकि फसल अपनी जड़ों के द्वारा मृदा में एक हानिकारक रासायनिक पदार्थ छोड़ती है, जिसकी मात्रा मृदा में अधिक हो जाने पर भूमि की उर्वरता तथा उत्पादकता दोनों घट जाती हैं। सह–फसली खेती में एक साथ एक ही खेत में विभिन्न फसलों को उगाने से एक फसल के हानिकारक प्रभाव, दूसरे फसलों के द्वारा उदासीन होते रहते हैं। परिणामस्वरूप मृदा की उर्वरता तथा उत्पादकता स्थिर बनी रहती है।
- मिश्रित खेती में एक फसल का हानिकारक प्रभाव दूसरी फसलों पर अधिक पड़ता है। इसे सह–फसली खेती के अंतर्गत पंक्तियों में उगाकर कम किया जा सकता है, क्योंकि पंक्तियों में फसलों को उगाने से एक फसल का हानिकारक प्रभाव दूसरी फसल पर कम पड़ता है।

गन्ने के साथ प्रमुख फसलों की सह–फसली खेती

हमारे देश में गन्ने की फसल मुख्यतः चार प्रकार से ली जाती है। पहली, शरदकालीन गन्ना जिसकी बुआई अक्टूबर–नवंबर में की जाती है तथा कटाई 12–14 माह बाद करते हैं। दूसरी बसंतकालीन गन्ना जिसकी बुआई फरवरी–मार्च में की जाती है तथा कटाई 10–12 माह बाद की जाती है। तीसरी वर्षाकालीन या अदसाली–जिसकी बुआई जुलाई में होती है तथा कटाई 18–20 माह बाद करते हैं। चौथी एकसाली जिसकी बुआई जनवरी–फरवरी में की जाती है तथा कटाई एक वर्ष (12 माह) में कर दी जाती है। उपर्युक्त गन्नों की चारों फसलों में से उत्तर प्रदेश में शरदकालीन और बसंतकालीन गन्ना ही उगाया जाता है, जिसके साथ रबी और अधिकांश फसलों की सह–फसली खेती भी की जा सकती है।

उपरोक्त फसलों के अलावा निम्नलिखित फसलों की भी गन्ने के साथ सहफसली खेती की जा सकती है, जैसे–मटर (सब्जी), लहसुन, भिंडी, लोबिया इत्यादि।

सह–फसली खेती का प्रबंधन

सहफसली खेती अपनाने का मुख्य उद्देश्य एक निश्चित समय में एक ही खेत से मृदा उर्वरता को स्थिर बनाते हुए अधिक आर्थिक उपज प्राप्त करना है, जिसे उचित प्रबंधन द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। सहफसलों को कभी भी मूल फसल का प्रतियोगी बनने नहीं दिया जाना चाहिए। अंतः मृदा की उर्वरता को बनाए रखते के लिए खेत तैयार करते समय पर्याप्त मात्रा में कार्बनिक और जैविक खाद का प्रयोग करना चाहिए। साथ ही साथ फसलों की आवश्यकतानुसार मूल फसल तथा सह–फसलों के लिए खाद आदि का प्रबंधन अलग–अलग करना चाहिए।

फसलों और जातियों का चुनाव

गन्ने के साथ उन्हीं फसलों और जातियों का चुनाव करना चाहिए जो गन्ने के साथ कम से कम प्रतियोगिता करें, उसे फैलाव के लिए कम से कम स्थान की जरूरत पड़े, फसल की परिपक्वता 100–110 दिन से अधिक न हो, कम खाद और उर्वरक की आवश्यकता पड़े इत्यादि।

शरदकालीन गन्नों के साथ	
फसल एवं अनुपात	**पंक्ति समायोजन की विधि**
गन्ना + गेहूं (1:2)	दो लाइन गन्ने के बीच में दो लाइन गेहूं की बुआई।
गन्ना + आलू (1:1)	दो लाइन गन्ने के बीच में एक लाइन आलू की बुआई।
गन्ना + राई (1:2)	दो लाइन गन्ने के बीच में दो लाइन राई की बुआई।
गन्ना + शरद्कालीन मक्का (1:1)	दो लाइन गन्ने के बीच में एक लाइन मक्का की बुआई।
गन्ना + शरद्कालीन सूरजमुखी (1:1)	दो लाइन गन्ने के बीच में एक लाइन सूरजमुखी की बुआई।
गन्ना + प्याज (1:2)	दो लाइन गन्ने के बीच में दो लाइन प्याज की बुआई।
गन्ना + धनिया (1:2)	दो लाइन गन्ने के बीच में दो लाइन धनिया की बुआई।
गन्ना + पालक (1:2)	दो लाइन गन्ने के बीच में दो लाइन पालक की बुआई।
	बसंतकालीन गन्ना के साथ
गन्ना + मूंग (1:2)	दो लाइन गन्ने के बीच में दो लाइन मूंग की बुआई।
गन्ना + उड़द (1:3)	दो लाइन गन्ने के बीच में तीन लाइन उड़द की बुआई।
गन्ना + बसंतकालीन मक्का (1:1)	दो लाइन गन्ने के बीच में एक लाइन मक्का की बुआई।
गन्ना + बसंतकालीन सूरजमुखी (1:1)	दो लाइन गन्ने के बीच में एक लाइन सूरजमुखी की बुआई।
गन्ना + मूली मक्का (1:2)	दो लाइन गन्ने के बीच में दो लाइन मूली की बुआई।

उदाहरण के तौर पर सह–फसली खेती के लिए निम्नलिखत फसलों की जातियों की संस्तुति की गई है:

गन्नाः– को.–94222, को.–95429, को.–8432, को.–92423,

प्याजः पूसा लाल, पूसा रतनार, हिसार, एन–53।

धनियाः सिंधु, साधना, स्वाति।

राईः वरुणा, रोहिणी, वरदान, वैभव, शेखर।

तोरईः पी.टी.–303, पी.टी.–30, भवानी, टी.–9।

गेहूँः डी.बी.डब्ल्यू–14, एच.डी.–2864 (ऊर्जा), यू.पी–310, पी.बी.डब्ल्यू–154, यू.पी.–2388, पी.बी. डब्ल्यू–343।

मसूरः नरेंद्र मसूर–5, पी.एल.–406, पंत–206, पंत–209, पी.एल.–639।

मक्काः शक्ति, प्रोटिना, लक्ष्मी, नवीन, श्वेता, कंचन।

आलूः कुफरी चंद्रमुखी, कुफरी अलंकार, कुफरी शीतमान, कुफरी चमत्कारी, कुफरी किसान, कुफरी अशोक।

मूंगः पूसा बैंशासी, टी.–1 टी.–44, पंत मूंग–1, पी.डी.एम–11, पी.डी.एम.–54, पी.डी.एम.–139, एच.यू. एम.–21।

उड़दः टी.–9, टी.–27, यू.पी.ए.–19, नरेंद्र–1, के.यू.–300।

सूरजमुखीः मार्डन, बी.एस.एच.–1, के.बी.एस.एच. –1, ए.पी.एस0–11, सूर्या, आई.सी.आइ.–361, पी.सी. एस.एच.–50।

बुआई का समय

गन्ने के साथ विभिन्न फसलों की सह–फसली खेती में फसलों की बुआई गन्ने की बुआई के साथ ही करनी चाहिए। लेकिन यदि ऐसा संभव न हो सके तो सह–फसली फसलों की बुआई इसके समय के अनुसार गन्ने के बुआई के बाद करनी चाहिए। उदाहरण के तौर पर गन्ना + आलू में दोनों फसलों की बुआई एक साथ अक्टूबर–नवंबर में करते हैं, लेकिन गन्ना + गेहूं की बुआई गन्ने की बुआई से 15–20 दिन बाद करते हैं।

बीज और बुआई की विधि

सहफसली खेती में गन्ने के बीज की मात्रा शत–प्रतिशत होती है, अर्थात् एकफसली या शुद्ध खेती के बराबर (75–80 क्विंटल/हे.) ही लगता है लेकिन सह–फसली फसल की बीज की मात्रा उनकी पंक्ति संख्या के अनुसार प्रयोग की जाती है। उदाहरण के तौर पर गन्ना + आलू (1:) में गन्ने की कतारों की संख्या 100 प्रतिशत है लेकिन आलू के कतारों की संख्या एकफसली खेती का 50 प्रतिशत है। इसलिए आलू के बीज की मात्रा शुद्ध फसल की बीज की मात्रा का 50 प्रतिशत (12–15 क्विं./हे.) लगेगी।

सह–फसली खेती में फसलों की बुआई एक–फसली खेती की तरह की जाती है। लेकिन पंक्तियों का समायोजन मुख्य फसल के दो कतारों के बीच में सह–फसली फसलों की कुछ कतारों की बुआई करके करते हैं।

उर्वरकों की मात्रा और प्रयोग विविध

गन्ने के साथ सह–फसली खेती में गन्ने के लिए उर्वरक की मात्रा एकफसली खेती के बराबर अर्थात् 200 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 120 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 120 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर प्रयोग करते हैं, लेकिन सहफसली फसलों में उर्वरकों की मात्रा उनकी पंक्ति के अनुपात के अनुसार ज्ञात करते हैं। उदाहरण के तौर पर गन्ना + मूंग (1:2) में गन्ने की पंक्ति संख्या एकफसली खेती के बराबर है लेकिन मूंग की पंक्तियों की संख्या एक–फसली खेती का 66 प्रतिशत है। इसलिए उर्वरक की मात्रा भी शुद्ध खेती (10–15 कि. ग्रा. नाइट्रोजन हेक्टेयर) की दर से देते हैं। सहफसली खेती में सहफसली फसलों को केवल नाइट्रोजन उर्वरक ही देते हैं। शेष पोषक तत्वों का प्रयोग एकफसली खेती के अनुसार ही करते हैं, अतिरिक्त मात्रा को खड़ी फसल में पंक्तियों के अनुसार डालते हैं।

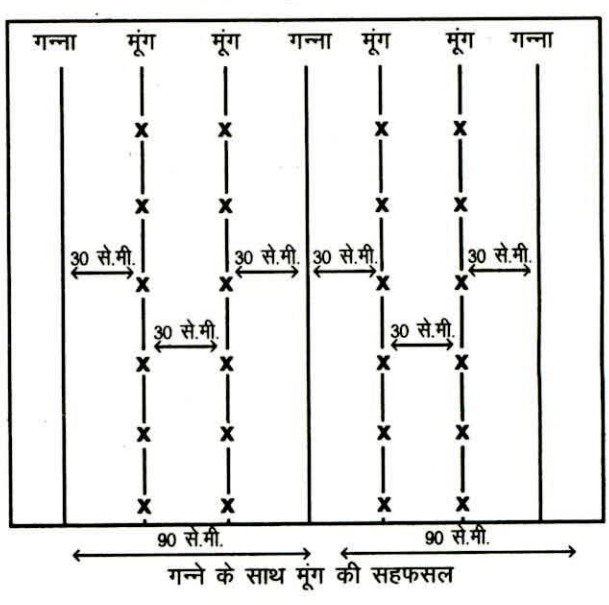

गन्ने के साथ मूंग की सहफसल

सिंचाई

गन्ने के साथ अनेक फसलों की सहफसली खेती में सिंचाई मुख्य फसल को आधार मानकर करते हैं, लेकिन सहफसली फसलों को यदि अतिरिक्त सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है तो उसे अलग से केवल पंक्तियों में सिंचाई करके पूरा किया जाता है।

खरपतवार नियंत्रण

सहफसली खेती में खरपतवार का नियंत्रण सस्य क्रियाविधि द्वारा होता है जो श्रमिकों द्वारा समय–समय पर निराई–गुड़ाई के रूप में संपन्न की जाती है; लेकिन अति आवश्यकता के समय उन शाकनाशी रसायनों का भी प्रयोग कर सकते हैं जो दोनों फसलों को हानि न पहुंचाती हों। उदाहरण के तौर पर गन्ना + मक्का (1:1) खेती मे एट्राजीन या सिमेजीन नामक शाकनाशी की 1.5 कि.ग्रा. मात्रा को 1000 लीटर पानी में घोलकर बुआई के बाद लेकिन अंकुरण से पहले प्रयोग कर सकते हैं।

कीटों एवं रोगों की रोकथाम

सहफसली खेती में कीटों और रोगों की रोकथाम के लिए मुख्य रूप से रसायन-रहित विधि को ही अपनाना चाहिए। यदि रसायन विधि से रोकथाम करनी है तो मुख्य फसल को आधार मानकर उसी रसायन का प्रयोग करना चाहिए, जिसका हारिकारक प्रभाव दोनों फसलों पर कम से कम पड़े। ध्यान रहे रसायनों का छिड़काव हमेशा पंक्तियों के अनुसार करना चाहिए। सहफसली खेती में रोगों की रोकथाम के लिए फसल की बुआई से पहले, बीजों तथा मृदा को रोगाणुनाशी रसायन जैसे–थीरम, एगलाल, ऐरेटान, एग्रोसान जी. एन. इत्यादि से उपचारित कर देना चाहिए।

कटाई और उपज

गन्ने के साथ अनेक फसलों की सहफसली खेती में सहफसली फसल की कटाई गन्ने की कटाई से बहुत पहले करते हैं। शरदकालीन गन्ने के साथ बोई गई सहफसली फसलों की बुआई के 100–110 दिन बाद तथा बसंतकालीन गन्ने के साथ बोई गई फसलों की 60–70 दिन बाद कटाई कर देते हैं। ऐसा करने से गन्ने को बढ़ने के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है। परिणामस्वरूप गन्ने की उपज में कोई कमी नहीं होती।

सहफसली खेती में गन्ने की उपज शत–प्रतिशत एकफसली खेती के बराबर अर्थात् 800–1000 क्विं./हेक्टेयर प्राप्त होती है, लेकिन सहफसली फसलों की उपज पौधे या पंक्ति संख्या के आधार पर प्राप्त होती है अर्थात् यदि पंक्तियों की संख्या एकफसली खेती का 50 प्रतिशत है तो फसल की उपज भी उसी अनुपात में लगभग होगी। उदाहरण के तौर पर मान लें कि गन्ना + उड़द (1:2) में शरद की पौधों या पंक्तियों संख्या एकफसली फसल की 66 प्रतिशत है। ऐसी परिस्थिति में किए गए शोध कार्यों से पता चलता है कि उड़द की उपज निवता खेती (18–20 क्विं./हे.) प्राप्त होती है। जोकि उसका 65–70 प्रतिशत है।

शरदकालीन गन्ने के साथ

(1) **गन्ना + गेहूं** अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में गन्ने की बुआई 90 से.मी. की दूरी पर पंक्तियों में करें। गन्ने के अंकुरण के पश्चात् नवंबर के दूसरे सप्ताह में सिंचाई कर दें एवं ओट आने पर गुड़ाई करें। गुड़ाई के पूर्व 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर पंक्तियों के मध्य डालें। गन्ने की दो पंक्तियों के मध्य दो पंक्तियां गेहूं की बोएं। गेहूं की पंक्तियों के मध्य 20 सेंमी. तथा गन्ना एवं गेहूं कि पंक्तियों के मध्य 30–35 सें.मी. की दूरी रखें। गेहूं के अंकुरण के पश्चात् 20–22 दिन पर खेत की सिंचाई करें एवं गेहूं के लिए 30 किग्रा. नाइट्रोजन की दूसरी मात्रा 75 किग्रा. प्रति हेक्टेयर का प्रयोग करें। इस प्रकार गन्ने के साथ–साथ गेहूं की उपज 35–40 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक मिल जाती है।

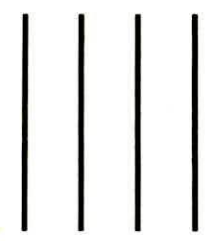

(2) गेहूं + आलू : गन्ने की बुआई 90 सें.मी. दूरी की पंक्तियों में अक्टूबर के प्रथम सप्ताह मे करें। पटेला करने के पश्चात् पंक्तियों के मध्य एक कतार आलू की बोएं। दो पौधों के मध्य 15 सें.मी. की दूरी रखें तथा बुआई के समय पंक्तियों के मध्य आलू के लिए 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर डालें। फसल की सिंचाई आलू की आवश्यकता के अनुसार करें। जनवरी में आलू की खुदाई के पश्चात् नाइट्रोजन की दूसरी मात्रा 75 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर का उपयोग करें। इस प्रकार 120–130 क्विंटल प्रति हेक्टेयर आलू की अतिरिक्त उपज प्राप्त होती है।

(3) आलू + गन्ना + गेहूं : सर्वप्रथम 90 सें. मी. की दूरी पर दो पंक्तियाँ आलू की बोएं एवं अंकुरण के पश्चात् मिट्टी चढ़ा दें और पहली सिंचाई के पश्चात् पंक्तियों के मध्य खाली स्थान में तीन पंक्ति गेहूं की बुआई कर दें। आलू की खुदाई के पश्चात् बसंतकालीन गन्ने की बुआई कर दें। इस प्रकार एक ही समय में गन्ने के साथ आलू एवं गेहूं की फसलें भी प्राप्त की जा सकती हैं।

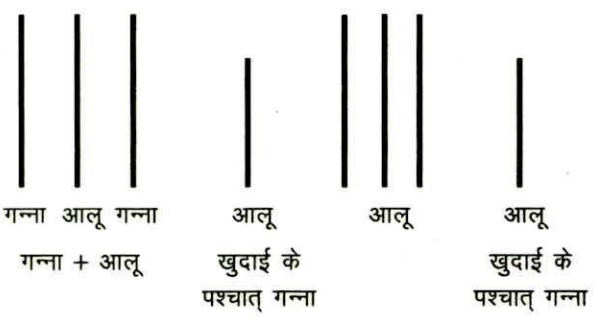

(4) गन्ना + लाही (तोरिया) : गन्ने की बुआई अक्टूबर के प्रथम सप्ताह में करने के पश्चात् दो पंक्तियों के मध्य में एक पंक्ति लाही की बुआई करें तथा लाही के अंकुरण के पश्चात् (20–25 दिन के बाद) प्रति हेक्टेयर 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन लाही फसल हेतु प्रयोग कर सिंचाई करें। लाही की फसल जनवरी में तैयार हो जाती है। इसकी कटाई के पश्चात् गन्ने की फसल 75 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हेक्टेयर प्रयोग करें तथा दूसरे दिन सिंचाई कर दें। इससे लाही की 10–12 क्विंटल अतिरिक्त उपज प्राप्त होती है।

इसी प्रकार शरद्कालीन गन्ने के साथ दलहनी फसलें तथा मसूर, मटर, राजमा भी ली जा सकती हैं, किंतु दलहनी फसलों में नाइट्रोजन. का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार आवश्यकतानुसार लहसुन, मिर्च, धनिया, शलजम, मेथी, गाजर, मूली, सौफ, चुकंदर आदि फसलें भी शरदकालीन गन्ने के साथ उगाई जा सकती हैं।

बसंतकालीन गन्ने के साथ

गन्ना + मूंग या उर्द : गन्ने की बुआई फरवरी में करने के पश्चात् दो पंक्तियों के मध्य दो पंक्तियां अल्पकालीन मूंग पूसा बैशाखी या टाइप 44 अथवा तीन पंक्तियां उर्द (टाइप 9) की उगाई की जा सकती है। उर्द या मूंग की फसल के लिए नाइट्रोजन का प्रयोग न करें। कटाई के उपरांत मई माह में उर्वरकों का प्रयोग करें। इसी प्रकार मूंगफली, कपास, सूरजमुखी आदि फसलें भी आवश्यकतानुसार बसंतकालीन गन्ने के साथ उगाई जा सकती हैं।

अंतःफसली खेती के वैज्ञानिक निष्कर्ष

- कृषि संसाधनों का बेहतर उपयोग होता है।
- प्रति इकाई अतिरिक्त आय प्राप्त होती है।
- घरेलू आवश्यकता की पूर्ति होती है।
- यद्यपि कई अंतःफसलों के उग जाने से गन्ने की

उपज थोड़ी कम प्राप्त होती है, किंतु गन्ना–आलू या गन्ना + लहसुन की खेती करने पर एकल की तुलना में गन्ने की उपज अधिक होती है।

- लहसुन, प्याज, मेथी आदि फसलें उगाने से गन्ने में कीटों का प्रकोप कम होता है।

गन्ने की खेती में संतुलित उर्वरक प्रबंधन

वैज्ञानिक अनुमानों के अनुसार औसतन 100 टन प्रति हेक्टेयर देने वाली गन्ना फसल मृदा से 200 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 55 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 280 कि.ग्रा. पोटाश, 30 कि.ग्रा. गंधक, 55 कि.ग्रा. कैल्शियम, 3.4 कि.ग्रा. लोहा, 1.2 कि.ग्रा. मैगनीज, 0.6 जस्ता तथा 0.2 कि.ग्रा. कॉपर ग्रहण करती है। अतः मृदा की उर्वरता बनाए रखने तथा अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए उपरोक्त मात्राओं के समतुल्य पोषक तत्वों की निरंतर पूर्ति करना आवश्यक होता है।

गन्ना विकास विभाग तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की संस्था फसल–प्रणाली अनुसंधान परियोजना निदेशालय, मोदीपुरम के संयुक्त प्रयोगों के अनुसार पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पोषक तत्वों के निम्नानुसार प्रयोग से सर्वोत्तम परिणाम प्राप्त हुए है।

नाइट्रोजन–175 कि.ग्रा., फॉस्फोरस 120 कि.ग्रा. पोटाश 175 कि.ग्रा., सल्फर 40 कि.ग्रा. बोरेक्स 5 कि.ग्रा. एवं जिंक सल्फेट 30 कि.ग्रा.।

उपर्युक्त प्रयोगों के आधार पर उपरोक्त पोषक तत्वों की पूर्ति हेतु प्रति बीघा (12 बीघा = एक हेक्टेयर) निम्न उर्वरकों के प्रयोग की संस्तुति की गई है:

यूरिया – 20 कि.ग्रा., डी.ए.पी.–20 कि.ग्रा., एम.ओ.पी.–25 कि.ग्रा., एस.एस.पी–30 कि.ग्रा. या जिप्सम–25 कि.ग्रा., बोरेक्स–400 कि.ग्रा. तथा जिंक सल्फेट–2.5 कि.ग्रा.।

उर्वरकों के प्रयोग की विधि

- यूरिया की 1/3 मात्रा, एम.ओ.पी की 1/2 मात्रा तथा शेष सभी तत्वों की पूरी मात्रा गन्ने की बुआई के समय मिलाकर डालें।
- जिंक सल्फेट को सबसे अंत में बुआई के समय मिलाएं अन्यथा मिश्रण में नमी आ जाएगी।
- बुआई के 50–60 दिन पश्चात् और सिंचाई के 2–3 दिन के बाद 1/3 मात्रा यूरिया एवं 1/2 मात्रा एम.ओ.पी. को खेत में डालकर गुड़ाई कर दें।
- यूरिया की शेष 1/3 मात्रा 80–90 दिन बाद सिंचाई के 2–3 दिन बाद प्रयोग करें इसके बाद मिट्टी चढ़ाए।
- पेड़ी गन्ने की दशा में जुताई/गुड़ाई के समय उपरोक्त के अनुसार 1/3 भाग यूरिया एवं अन्य सभी तत्वों का प्रयोग करें। इसके बाद अवशेष उर्वरकों का उपयोग करें।

***

760 HRD/13—3A

7

हरड़ एक उपयोगी वनौषधि

डॉ. दिलीप कुमार मौर्य

भारतीय उपमहाद्वीप में पाए जाने वाले वृक्षों में हरड़ एक बहु उपयोगी वृक्ष है। इस महाद्वीपीय क्षेत्र में पाए जाने वाले औषधीय वृक्षों में हरड़ एक बहुचर्चित वनस्पति है। प्राचीन भारतीय चिकित्सा शास्त्र आयुर्वेद के अलावा आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी इसमें पाए जाने वाले गुणकारी तत्वों की विवेचना कर इसके महत्व को प्रतिपादित क्रिया है।

विभिन्न भाषाओं में हरड:

अंग्रेजी/लैटिन	–	टर्मिनलिया चेबुला
संस्कृत	–	हरीतकी
हिंदी	–	हरड़, हर्र
गुजराती	–	हरडे
बंगाल	–	हरीतकी
मराठी	–	हिरडा
कन्नड	–	अणिलेकाबी
तमिल	–	अंकेन/कुडुभारा
मलायलम	–	कटुक्काभार
फारसी	–	हलिले
अरबी	–	एहलीलज

प्राप्ति क्षेत्र और बनावट:

वृक्ष के रूप में हरीतकी का पेड़ मूलतः निचले हिमालय क्षेत्र में रावी तट से लेकर पूर्व बंगाल, असम तक पाँच हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। सामान्यतः 10 से 80 फीट ऊँचे इस वृक्ष की छाल गहरे भूरे रंग की होती है। वासा (अडूसा) के पात्र के सामान 7.20 सें.मी. तक लंबे पत्र 1 इंच चौड़े होते हैं। फूल छोटे पीताभ श्वेत लंबी मंजरियों में होते हैं। फल 1–2 इंच लंबे अंडाकार होते हैं, जिसके पृष्ठ भाग पर पाँच रेखाएं होती हैं। कच्चे फल हरे होते हैं, जो पकने पर धूमिल पीले रंग के हो जाते हैं। प्रत्येक फल में एक बीज होता है। इस बीज के ऊपर कठोर आवरण होता है, जिसे तोड़ने पर अंदर से मुलायम गिरी निकलती है।

फल-फूल – अप्रैल–मई में नए पल्लव आते हैं। फूल शीतकाल में लगते हैं। पके फलों का संग्रह जनवरी से अप्रैल के मध्य किया जाता है। इसके फल का औषधीय कार्यो में प्रयोग होता है।

जातियाँ – आयुर्वेद के अनुसार हरड़ की सात जातियाँ होती हैं। चेतकी (हिमालय), विजया (सिंधु), चंपा, अमृता, अभया, सोठी और जीवंती। हिमालय क्षेत्र में पाई जाने वाली जाति (चेतकी हरड़) सौम्य तथा विंध्य क्षेत्र की हरड़ आग्नेय गुणों से युक्त होती है, विजया हरड़ तुंबी की तरह गोल होती है तथा मुख्य रूप से विंध्य क्षेत्र में पैदा होती है। चंपा हरड़ की गुठली बड़ी और छाल पतली होती है। अमृता जाति के हरड़ की गुठली छोटी और छाल मोटी होती है। जिस हरड़ के ऊपर उभरी पाँच रेखाएँ होती हैं, उसे अभय तथा जिसका रंग स्वर्ण की तरह पीला होता है उसे जीवंती कहते हैं।

760 HRD/13—3B

विश्वविख्यात आयुर्वेदिक ग्रंथ 'भावप्रकाश' के अनुसार, विजया सभी रोगों पर तथा रोहिणी व्रण पर उपयोगी है। चेतकी की दो जातियाँ होती है – काली एवं सफेद। सफेद छह अंगुल लंबी और काली एक अंगुल लंबी होती है।

बाजार में दो प्रकार ही हरड़ बिकती हैं– छोटी और बड़ी। बड़ी हरड़ में पत्थर के समान सख्त गुठली होती है जो छोटी में नहीं होती। जो फल पेड़ से गुठली बनने के पहले अपरिपक्व हालत में ही गिर जाते हैं या तोड़कर सुखा लिए जाते हैं उन्हें छोटी हरड़ कहते हैं। पूर्ण परिपक्व हरड़ ही बड़ी हरड़ कहलाती है। रोगोपचार में छोटी हरड़ ही ज्यादा उपयोगी होती है। इसका प्रभाव सौम्य और शांत होता है, इसमें तेजी नहीं होती है। वनस्पतिविज्ञान के अनुसार हरड़ के तीन भेद किए जा सकते हैं – पूर्ण विकसित परिपक्व फल या बड़ी, अद्र्धपक्व या पीली हरड़, जिसका गूदा काफी मोटा एवं कसैला होता है तथा अपक्व फल या छोटी हरड़।

'ड्यूथो' ने अपनी चर्चित वनस्पति विज्ञान की पुस्तक 'फ्लोरा ऑफ अपर गैंगेटिक प्लेन' में लिखा है कि हरड़ का मूल स्थान गंगा का मैदानी भाग ही है।

रासायनिक संघटन – हरड़ में अनेक उपयोगी तत्व पाए जाते हैं जो इस प्रकार है– टैनिक अम्ल (20–40 प्रतिशत), गैलिक अम्ल, चेबुलिनिक अम्ल और म्यूसिलेज/रेचक पदार्थ तथा एन्थ्राक्विनिन जाति के ग्लाइकोसाइड। इनमें से एक की संरचना सनाय के सीनोसाइड "ए" से मिलती–जुलती है। इसके अलावा हरड़ में 10 प्रतिशत जल, 13.9 से 16.4 प्रतिशत नॉनटैनिन्स (अविलेय) पदार्थ होते हैं। वेल्थ ऑफ इंडिया के अनुसार ग्लूकोस, सर्विटॉल, फ्रूक्टोस, सूक्रोस, माल्टोस, अरेबिनोज हरड़ के प्रमुख कार्बोहाइड्रेट्स होते हैं। मुक्तावस्था में 18 ऐमीनों अम्ल मिलते हैं तथा फास्फोरिक एवं सक्सोनिक अम्ल भी होते हैं। पकने के साथ फल में टैनिक अम्ल घटता जाता है। बीज से एक तेल भी निकलता है।

आधुनिक युग में हरड़ – वैज्ञानिकों के अनुसार हरड़ में उपलब्ध विभिन्न ग्राही पदार्थ प्रोटीनों को परस्पर आबद्ध कर देते हैं। विख्यात भारतीय औषधीय विशेषज्ञ डॉ. घोष ने अपने 'मैटेरिया मेडिका' में कहा है कि हरड़ में पाया जाने वाला टैनिक अम्ल श्लेष्मा झिल्लियों के श्लेष्मा और ऐलब्यूमिन को जमाते हुए उसकी परत बना देते हैं, जिससे शरीर के उस कोमल भाग की रक्षा होती है। यह अम्ल आँतों को संकुचित करता है तथा रक्तस्राव को कम कर देता है। अतिसार में यह रक्तस्राव अत्यधिक मात्रा में होकर रोगी को कमजोर बनाता है। टैनिक अम्ल में यीस्ट एवं अन्य जीवाणु भी अवक्षेपित हो जाते हैं। टैनिक अम्ल जीवाणुनाशी है जो बाह्य रोगाणुओं को नष्ट करता है व दुर्गंध को समाप्त करता है। इस विशेष प्रभाव के कारण ही हरड़ के एनिमा से (क्वाथ/स्वरस) व्रणीय बृहदांत्रशोघ (अल्सरेटिव कॉलाइटिस) जैसे असाध्य रोग भी शांत होते देखे गए हैं। पेपेवैरीन के समान शूल–निवारक क्षमता भी हरड़ में पाई गई है। हरड़ का मुख्य रेचक पदार्थ "ऐन्थ्राक्विनोन" अपना प्रभाव बड़ी आँत पर विशेष रूप से दिखलाता है। सेवन के मात्र 6 घंटे में ही इसका प्रभाव शुरू हो जाता है। पुरानी कब्ज से जकड़ी आँतों को बिना किसी प्रकार नुकसान पहुंचाए लाभ पहुँचाता है। यद्यपि यह वात, पित्त एवं कफ तीनों का शमन करता है, तथापि विशेष रूप से यह वातशामक है। अतएव समग्र कायिकतंत्र पर इसका प्रभाव पड़ता है। दुर्बल नाड़ियां समर्थ बनती हैं, इंद्रियां सामर्थ्यवान होती हैं। कोशिकीय एवं अतःकोशिकीय संस्थानों की शोध–निवारण की क्रिया में भी यह अत्यंत प्रभावकारी भूमिका निभाता है।

प्रयोग : 1–3 वर्ष तक के व्यक्ति के लिए।

मात्रा : चूर्ण 3–6 ग्राम 2–3 बार।

विशेषता – डेढ़ तोले से अधिक भार वाली

छिद्ररहित, छोटी गुठलीयुक्त, बड़े खोल वाली हरड़, जो पानी में डूब जाए, उत्तम होती है। युगों–युगों से हरड़ का प्रयोग जन–कल्याण हेतु प्राचीन भारतीय चिकित्सों द्वारा प्रयोग होता आया है। भारतीय चिकित्सा पद्धति के अनुसार किसी भी द्रव्य (औषधि) में 6 रसों में से कोई एक रस पाया जाता है, लेकिन हरड़ में एक साथ पाँच प्रकार के रस पाए जाते हैं। इसमें केवल लवण नहीं होता।

आयुर्वेद में हरड़ – लवण के अतिरिक्त अन्य पाँच रसों मधुर, कषाय, अम्ल, कटु एवं तिक्त से युक्त होना इसे सभी प्रकार से कल्यांणकारी बनाता है।

6–8वीं शताब्दी ई.पूर्व. में रचित चरक संहिता के अनुसार यह कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त, श्वास (यक्ष्मा), पांडु रोग, अर्श, ग्रहणी रोग, विषम ज्वर, हृदय रोग, शिरो रोग, अतिसार, अरुचि, कास, प्रमेह, प्लीहा वृद्धि, नूतन उदर रोग, मुख से कफ का स्राव, स्वरभेद, शरीर की छाया में विकृति, कामला रोग, कृमि रोग, शोथ, तमक श्वास रोग, वमन रोग, नपुंसकता, आदि अनेक रोगों को, हृदय तथा शरीर में भारीपन, स्मरण शक्ति और बुद्धि का व्यामोह दूर करने वाली है– (च.सं.चि. 129–34)। चरक के अनुसार यह दोषों का अनुलोमन करती है, लघु दीपन और पाचन करने वाली है। इसके निरंतर सेवन से आयु सूखपूर्वक व्यतीत होती है। यह पुष्टिकारक है, अर्थात् हरीतकी–सेवी पुरुष रोग के भय से रहित, सुखी एवं स्वास्थ्य संपन्न होता है। यह उत्तम व्यवस्थापक है। अनुपान–भेद से यह सभी रोगों को शांत करने वाली है। बुद्धि एवं इंद्रियों को बल देने वाली है।

चौथी–पाँचवी शताब्दी ई.पूं. में रचित सुश्रुत संहिता में इसे व्रण के लिए हितकारी, ऊष्मा–विरेचक, मेद्यनाशक, शोथ, कुष्ठनाशक, कषाय, अग्निदीपक तथा नेत्रों के लिए हितकारी बताया है (सु.सं. 2.11)।

सोलहवीं शताब्दी के चर्चित आयुर्वेदिक ग्रंथ भावप्रकाश के अनुसार, हरीतकी धारण शक्ति (मेधा) के लिए हितकारी, पचने में मधुर रसायन है। वृद्धावस्था के रोग दूर करने वाली, नेत्रों के लिए हितकर, स्वर भेद, ग्रहणी रोग, विबंध, विषम ज्वर, गुल्म, उदर रसायन तथा वमन, हिचकी, खुजली, हृदय रोग, कामला, शूल, प्लीहा, यकृत, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र एवं मूत्राघात सब दूर करती है। (भाव प्र. 19–22)।

भावप्रकाश के अनुसार, विंध्य क्षेत्र में पाई जाने वाली 'विजया' सभी रोगों में, सिंधु क्षेत्र की रोहिनी व्रण पूरण के रूप में, पूतना प्रलेप हेतु, अमृता शोधन हेतु, अभया आँख के रोग, में जीवंती हरड़ संपूर्ण रोग में विशेष लाभकारी होती है। कोई–काई हरड़ तो छूने, सूँघने एवं स्पर्श करने से ही मल का भेदन कर देती है।

प्राचीन भारत में हरड़ – पाँचवी शताब्दी में भारत भ्रमण पर आए चीनी यात्री एवं चिकित्सक इत्सिंग ने लिखा है– "भारत में लगभग सभी घरों में एक विशेष औषधि का प्रयोग होता है, जो सभी रोगों से बचाव करती है। यहाँ तक कि उपवास में भी कमजोरी एवं भूख–प्यास की कमी पूरी करती है। यह गोली हरड़, काली मिर्च, सोठ एवं पीपर तथा शहद से तैयार की जाती है।"

विभिन्न भारतीय ग्रंथों में हरड़ – हारीत संहिता के अनुसार, हारीत मुनि ने अगस्त्य ऋषि से आरोग्य संबंधी सर्वाधिक गुण हरड़ के ही बतलाए हैं। उनके अनुसार–

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः।

अर्थात् सभी रोगों की जड़ कुपित हुआ मल ही है। हरड़ इस मल को ही प्रमुखतः नियमित करती है।

उन्मीलनी बुद्धिबलेंद्रियाणां निर्मूलनी पित्तकफानिलानाम्

विस्रंसिनी मूत्रसकृन्मलानां हरीतकी स्यात् सह भोजनेन।।

छोटी हरड़ यदि भूनकर थोड़ी मात्रा में सेंध नमक या काले नमक के साथ चूर्ण बनाकर अल्प मात्रा में भोजन के साथ ले लिया जाए तो यह बुद्धि, बल एवं इंद्रियों की कार्यशक्ति विकसित करती है तथा वात, पित्त, कफ आदि त्रिदोषों का शमन करती है। साथ ही मूत्र, मल, पसीना इत्यादि मलों को संशोधित कर बाहर निकालती है।

वैद्यकशास्त्र के प्रणेता लोलिंबराज ने इसे 'शिवा' (श्वास कास की औषधि, माँ पार्वती का रूप) कहा है–

घनविश्वशिवा गुड़जा गुटिका त्रिदिनं वदनाम्बुजमध्यधृता।
हरति श्वसनं कसनं सदयं हि ललनेव हिमं हृदयोपगता।।

उपरोक्त श्लोक में वे अपनी पत्नी से कहते हैं–, प्रिये, धन (मोथा) विश्व (सोंठ) एवं शिवा (हरड़) इनको बराबर मात्रा में लेकर समभाग पुराना गुड़ मिलाकर गोली बनाकर तीन दिन नित्य चूसने से रोगी का श्वास कास ऐसे भाग जाता है जैसे वरांगना के साहचर्य से शीत पलायन कर जाता है। राजा को इसका उपयोग बतलाते हुए वह कहते हैं–

हरीतकी भुंक्ष्व राजन् मातेव हितकारिणी।
कदाचित् कुपिता माता नोदरस्था हरीतकी।।

हे राजन! आप अनेक कटुक, कूटज, कषाय औषधि न खाकर केवल हरड़ का ही नित्य सेवन करें। यह माता (शिवा) के समान हितकारिणी है। माता कभी किसी कारणवश कुपित हो भी सकती है, मगर उदर में स्थित हरड़ कभी कुपित नहीं होती। यह प्रत्येक स्थिति में अनेक रोगों का हरण करती है।

राजवल्लभ निघंटु का भी कथन इसी प्रकार का है–

यस्य माता गृहे नास्ति तस्य माता हरीतकी।
कदाचित् कुप्यते माता, नोदरस्था हरीतकी।।

हरीतकी के सेवन के बारे में सभी ने एकमत से स्वीकार किया है–

"ग्रीष्मे तुल्यगुडां सुसैंधवयुतां मेघवदम्बरे शरदि तुल्य शर्करया शुंठया तुषारागमे। पिप्पल्या शिशिरे वसंतसमये क्षौद्रेण संयोजितम्।।"

अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में गुड़ के साथ, वर्षा में सेंधा नमक, शरद् में शक्कर, हेमंत में सोंठ के साथ, शिशिर में पिपली एवं बसंत में मधु के साथ सेवन करने से इस रसायन के फल की प्राप्ति होती है।

हरस्य भवने जात हरिता च स्वभावतः
हरते सर्वरोगांश्च, तस्मात् प्रोक्ता हरीतकी।।

श्री हर (महादेव) के घर में उत्पन्न होने से, स्वभाव से हरित वर्ण की होने से तथा सब रोगों का हरण करने में समर्थ होने से इसे हरीतकी कहा जाता है।

आधुनिक वैज्ञानिकों की दृष्टि में हरड़ – श्री नाडकर्णी के अनुसार, 'हरड़' एक निरापद, सौम्य, विरेचक औषधि है। साथ ही यह मल निष्कासन को सुव्यवस्थित करती है। अंदर के रसों की अनावश्यक हानि नहीं होने देती। रेचक एवं ग्राही दोनों परस्पर–विरोधी स्वभाव मात्र हरड़ में मिलते हैं जो इसे विलक्षणता प्रदान करते हैं। कच्चे फल, पके फलों की अपेक्षा अधिक रेचक होते हैं। इससे पित्त कम होता है। आमाशय व्यवस्थित होता है तथा बवासीर के मस्से उभरना तथा शिराओं का फूलना बंद हो जाता है। लंबे काल की पेचिश दस्त में अत्यंत लाभकारी है। सभी प्रकार की कृमियों का हरीतकी नाश कर देती है, उन्हें समूल नष्टकर वायु निष्कासन एवं उदर शूल में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

कर्नल चोपड़ा के अनुसार हरड़ कषाय, प्रधान विरेचक एवं बलवर्धक है।

डॉ. घोष के अनुसार यह आँतों की जीर्ण व्याधियों में विशेष लाभकारी है।

डॉ. एग्री ने अपने शोध से स्पष्ट किया है कि यह अनियंत्रित विरेचन क्रिया में भी लाभकारी है तथा आँतों को सुव्यवस्थित करने में सहायता प्रदान करती है।

डॉ. डीमेक के अनुसार दिन में दो बार तीन–तीन ग्राम हरड़ खाने से दस्त दूर हो जाते हैं।

डॉ. बोरिंग के अनुसार छह छोटी हरड़ों का काढ़ा बनाकर देने से पाँच–छह बार दस्त होकर पेट का शूल और वमन नष्ट हो जाता है तथा पेट साफ होता है। इसमें थोड़ी दालचीनी डालने से यह स्वादिष्ट और लाभप्रद हो जाती है। सामान्य तौर पर हरड़ में गुड़ मिलाकर इसका सेवन किया जाता है।

विभिन्नों रोगों में हरड़ से उपचार

(1) होम्योपैथी – बवासीर, कब्ज व पेचिश के लिए इसके मदर टिंक्च का प्रयोग होता है।

(2) यूनानी चिकित्सा पद्धति – इसमें हलैल स्याह नाम की छोटी हरड़ प्रयुक्त होती है। हकीम इसे आँतों एवं आमाशय को बल देने वाला संग्राही मानते हैं। अतिसार में इसे घी में भूनकर खिलाते हैं।

(3) आँव – हरड़, सोंठ, गुड़ समभाग लेकर नीम का रस डालकर गोली बनाकर खिलाएं या दो–तीन हरड़ों को गाय के दूध में घिसकर पिलाएं।

(4) पित्त से शरीर क्षीण होने पर – तीन–चार ग्राम हरड़ कूटकर रात के समय मट्ठे में भिगों दें, प्रातःकाल इस मट्ठे को पिलाएं, 3–4 सप्ताह रेचन होने पर घी–भात खिलाएं।

(5) अम्लपित्त – एक भाग हरड़, एक भाग द्राक्षा और दो भाग शक्कर की एकएक तोला की गोली बनाएं। सुबह शाम एक–एक गोली का प्रयोग करें।

(6) पांडुरोग – 3 माशा हरड़ चूर्ण, डेढ़–दो ग्राम शहद, तीन–चार ग्राम घी मिलाकर दें या 21 दिन गोमूत्र में रखकर नियमित एक–एक हरड़ दें।

(7) कफ, रक्तपित्त शूल अतिसार – हरड़ का शहद के साथ सेवन लाभप्रद होता है।

(8) अजीर्ण – छोटी हरड़ का सोंठ समभाग का गुड़ के साथ सेवन लाभप्रद होता है।

(9) जुलाब – छोटी हरड़, डंठल रहित गुलाब की कली का समभाग चूर्ण रात के समय पानी में भिगोकर तीन माशा दें। छह उत्तम हरड़ कूटकर आधा पानी में अष्टामांश काढ़ा छानकर पीएं।

(10) अंडवृद्धि – प्रातःकाल छोटी हरड़ चूर्ण गोमूत्र या एंरड तेल में मिलाकर दें या त्रिफला दूध के साथ दें।

(11) शूल – हरड़ चूर्ण तथा गुड़ मिलाकर सेवन करें।

(12) कास श्वास – हरड़ और बहेड़ा चूर्ण शहद के साथ देना चाहिए।

(13) नेत्र रोग – हरड़ आमला बहेड़ा से निर्मित त्रिफला के काढ़े से नेत्र धोएं या रात में घी शहद के साथ त्रिफला का सेवन करना चाहिए।

(14) शीत ज्वर – हरड़ एंव इंद्रजव एक तोला चूर्ण गुड़ के साथ सेवन करना चाहिए।

(15) त्रिदोष, आमातिसार एवं विसूचिका – हरड़, सोंठ, नागरमोथा एवं गुड़ समभाग में लेकर गोली बनाकर खिलाएं।

(16) नासूर, प्रमेह, भगंदर – त्रिफला काढ़ा

भैंस के घी के साथ लें।

(17) सदैव नीरोग – वजनदार अच्छी हरड़ कपड़छन करके एक से चार माशा चूर्ण घी में मिलाकर रोज खाएं। स्मरणशक्ति, आयु, नीरोगता प्रदान करेगा। मौसम के हिसाब से अनुपान करें।

प्रयोग विधि :

(1) हरीतकी को चबाकर खाना जठराग्नि बढ़ाता है।

(2) हरीतकी के चूर्ण का प्रयोग मल–शोधन में विशेष लाभकारी होता है।

(3) उबालकर प्रयोग करने से यह मल रोकता है।

(4) भूनकर खाने से यह वात, पित्त एवं कफ का नाश करता है, अर्थात् त्रिदोष से मुक्ति दिलाता है।

(5) भोजन के साथ प्रयोग करने पर बुद्धि, बल एवं इंद्रियों को विकसित करता है।

(6) भोजन के पश्चात् प्रयोग करने पर – यह खान–पान संबंधी दोष तथा वात, पित्त एवं कफ से उत्पन्न होने वाले रोगों का नाश करता है।

ऋतु के अनुसार हरड़ की प्रयोग विधि : हरीतकी का प्रयोग विभिन्न ऋतुओं में बदलाव से होने वाले दोषों के निराकरण के साथ ही अन्य प्रकार के रोगों में भी लाभकारी है।

औषधीय उपचार में मौसम के अनुसार हरड़ का निम्न सामग्रियों के साथ मिलाकर प्रयोग किया जाना अत्यंत उपयोगी रहता है :–

- वर्षा ऋतु में सेंधा नमक (1/6 भाग) के साथ प्रयोग कफ का शमन करता है।
- शरद ऋतु में शक्कर (देशी चीनी) के साथ प्रयोग पित्त का शमन करता है।
- हेमंत ऋतु में सोंठ (1/6 भाग) के साथ प्रयोग ठंड के प्रभाव से रक्षा कर शरीर को पुष्टि प्रदान करता है।
- शिशिर ऋतु में पिप्पली (1/6 भाग) के साथ प्रयोग शरीर को बल एवं पुष्टि प्रदान करता है।
- वसंत ऋतु में शहद के साथ प्रयोग से वात संबंधी समस्त व्याधियों को दूर करता है।
- ग्रीष्म ऋतु में गुड़ (1/6 भाग) रसायन की तरह फलदायी है।

विलक्षण एवं अद्‌वितीय औषधि – हरीतकी का वर्तमान युग में अपेक्षाकृत अधिक महत्व है, क्योंकि समस्त पर्यावरणीय विकृतियों, अशुद्धता एवं खाद्य पदार्थों में मिलावट एवं प्रदूषण का व्यापक प्रभाव हमारी पाचन–क्रिया एवं उसके उपांगों पर ही प्रभावी होता है, जो अंततः हमारी शारीरिक और मानसिक विकृतियों का कारण बनता है। निःसंदेह जिस प्रकार प्रत्येक चार पहिए, दो पहिए के वाहनों को एक निश्चित दूरी तय करने के बाद सर्विसिंग क्लीनिंग एवं ग्रीजिंग की आवश्कयता होती है वैसे ही हमारे शरीर में भी एकत्र होने वाले अनेक आविषी पदार्थों को (जो हवा, पानी, अन्न एवं अन्य माध्यम से शरीर से प्रवेश कर एकत्र होते रहते हैं) मल के रूप में बाहर निकालने तथा शरीर को शुद्ध बनाने के लिए हमारे पास सहस्राब्दियों से परीक्षित गंगातटवासी "शिवा" अर्थात् माता पार्वती सदृश "अभया" (अभय प्रदान करने वाली) या "जीवंती" (अर्थात् जीवन देने वाली) हरितवर्णा हरीतकी है।

निषेध : कमजोर शरीर वाले, अवसाद–जनित मानसिक रोगों से ग्रस्त, लंबा उपवास कर रहे व्यक्ति और गभर्वती स्त्रियों के लिए हरड़ का प्रयोग निषिद्ध है। अतः ऐसे लोगों को हरड़ का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

8

साँपों का विचित्र संसार

डॉ. हेमलता पंत

साँप सरीसृप वर्ग से संबंधित प्राणी हैं। साँप तेरह करोड़ वर्ष पहले अस्तित्व में आए। इनका आकार बेलनाकार होता है तथा शल्कों द्वारा ढका रहता है। अलग–अलग आकार और रंग के शल्क (स्केल) पाए जाते हैं। इनके सिर पर उपस्थित विभिन्न आकार व रंगों के शल्कों के आधार पर इनकी जाति पहचानी जाती है।

विश्व में साँपों की लगभग 3000 जीवित जातियाँ पाई जाती हैं। भारत में लगभग 300 प्रकार के साँप पाए जाते हैं। इनमें कुछ विषैले तथा कुछ विषहीन होते हैं भारत में 300 प्रकार के साँपों में से केवल 54 प्रकार के साँप ही विषैले हैं। संसार के दो देशों 'न्यूजीलैंड' तथा 'आइसैंड' में साँप नहीं पाए जाते हैं। विश्व का सबसे लंबा साँप 'एनाकोंडा' है जो लगभग 25 फुट लंबा तथा लगभग 181 किग्रा. वजन वाला होता है और भारत का सबसे लंबा सांप पायथन (अजगर) है, जो लगभग 20 फुट लंबा तथा 120 किग्रा. भार वाला है, लेकिन ये दोनों ही साँप विषहीन होते हैं। संसार का सबसे छोटा साँप पूरी तरह बढ़ने के बाद भी एक केंचुए जितना होता है। विश्व का सबसे विषैला साँप दक्षिणी आस्ट्रेलिया का 'टाइगर स्नेक' है, जो लगभग 7 से 20 फुट लंबा होता है। भारत में पाया जाने वाला जहरीला साँप मनीर या करैत हैं। इसमें नाग (कोबरा) की अपेक्षा तीन गुना अधिक जहर होता है। इसका शरीर काला–नीला होता है और उस पर सफेद धारियाँ होती है। यह रात में शिकार के लिए निकलता है। भारत में पाए जाने वाले साँपों में नाग (कोबरा), नागराज (किंग कोबरा), 'फुर्सा' (सॉस्केल्ड), 'दबोइया' (रिसल घोणस या रसेल वाइपर), करैत स्नेक, 'समुद्री साँप' और प्रवाल सर्प, क्रकच–शल्की विषैले साँप हैं, जबकि 'बलाइंड स्नेक (चेतक सर्प), विप स्नेक, मूषाद सर्प, रैट स्नेक, दुमुहां (डबल माउथ), सैन्ड बोआ या डबल हेडेड स्नेक, वाटर स्नेक, रेफटेल्ड स्नेक, वृक सर्प (वुल्फ स्नेक), ग्रास स्नेक और वृक्ष सर्प (ट्री स्नेक) विषैले सर्प नहीं हैं।

भारत में मिलने वाले विषैले साँपों में कोबरा साँपों की दस प्रमुख जातियों में से केवल दो जातियाँ नाग (कोबरा नाजा) तथा नागराज (किंग कोबरा, ऑफिया–फैगस हन्ना या नाजा हन्ना) पाई जाती हैं। नाग (कोबरा) के सिर के नीचे फन (हुड) पर यू के आकार का या अंडाकार या अर्ध–गोलाकार चिह्न मिलता है जो इनकी विशेष पहचान होती है। हुड पर उपस्थित इस प्रकार का चिह्न नागराज में नहीं मिलता है। नाग जाति के साँप 4 से 16 फुट तक लंबे होते हैं। कोबरा चूहे, मेढ़क, छिपकली, चिड़ियों आदि को खाता है जबकि किंग कोबरा विषैले और विषहीन साँपों को भी खाता है। विषैले साँपों में भारत में सबसे लंबा साँप किंग कोबरा है। इनके काटने के उपरांत हल्का दर्द होता है, सूजन बहुत शीघ्र आ जाती है, मनुष्य बेहोश होने लगता है, हृदय गति रुकने लगती है, ऊतकों की क्षति होती है। मृत्यु–दर इसके विष की मात्रा पर निर्भर करती है। उपचार सही समय पर होने से अधिकतर मामलों में मृत्यु का खतरा नहीं होता है। मंडलिया

(वाइपर) जाति के सांप लगभग 2 से 5 फुट तक लंबे होते हैं। इस जाति के साँपों में दो प्रकार की जातियाँ होती हैं, जिनमें गर्त घोणस (पिट वाइपर) तथा अगर्त घोणस (पिटलेस वाइपर) शामिल हैं। गर्त घोणस के सिर पर आँख की बगल में एक छिद्र होता है। गर्त घोणस, के अंतर्गत हिमालयी गर्त घोणस (एनसिस्ट्रोडॉन हिमालयेन्सिस) तथा हरित गर्त घोणस के अंतर्गत ट्राइगोनोसिफैलस या ट्राइमेरिसरस ग्रेमिनियस आते हैं। इन साँपों के काटने पर ऊतकों की काफी क्षति होती है लेकिन उपचार होने पर मृत्यु दर कम हो जाती है। अगर्त घोणस में पहला रसल घोणस (वाइपेरा रसेली) आता है जिसके काटने से शरीर के अंदर रक्तस्राव होता है, लेकिन उपचार उपरांत मृत्यु–दर साधारण हो जाती है। अगर्त घोणस में दूसरा साँप कालीनी घोणस (कारपेट वाइपर) या क्रकच–शल्की घोणस (सॉस्केल्ड वाइपर, इकिस केरिनेटस) आता है। यह सूखे क्षेत्रों में पाया जाता है, इसका विष मनुष्यों के लिए घातक नहीं है परंतु इसके काटने पर सूजन आती है और 24–36 घंटे बाद आंतरिक रक्तस्राव होता है। अतः मुँह, नाक और गुर्दे आदि से अधिक रक्तस्राव होने से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। नाग व घोणस जाति के साँप फुंकार मारते हैं। नाग जाति के साँप थोड़े समय के लिए धीरे से फुफकारते हैं जबकि घोणस जाति के साँप तेजी से लगातार फुफकारते हैं। करैत साँपों में मुख्य रूप से तीन प्रकार पट्टीदार के सांप अर्थात् करैत (बन्गारस फैसिएलस), सामान्य करैत (बन्गारस केइरलस) तथा काला करैत (बन्गारस नाइजर) शामिल हैं। ये लगभग 5 फुट तक लंबे, बहुत आकर्षक होते हैं। इनके काटे हुए स्थान पर ज्यादा दर्द नहीं होता है। काटने के लगभग एक घंटे बाद बेहोशी आने लगती है। काटे व्यक्ति को आंतरिक रक्तस्राव के कारण असहनीय पेट–दर्द होता है। ये चूहों के अतिरिक्त अन्य साँपों को भी खा लेते हैं। करैत सबसे अधिक विषैला साँप है। इसके काटने से मृत्यु दर सर्वाधिक होती है। समुद्री साँपों की श्रेणी में मुख्य रूप से 'हाइड्रोफिस' भारत के समुद्री तटों पर पाए जाते हैं। इनकी पूँछ बगल से चिपटी, चाबुक के समान होती है जिससे इन्हें आसानी से पहचाना जा सकता है। राजिल अथवा प्रवाल सर्प (कोरल साँप) छोटे, बहुत आकर्षक व नाग की आकृति के मिलते हैं, लेकिन इनका फन नाग की तरह नहीं होता। इनकी दो जातियाँ 'कैलोसिफ मिलानरस' तथा 'कैलोफिस निगरिसन्स' भारत में पाई जाती हैं। इनका विष मनुष्यों के लिए घातक नहीं होता।

भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में पाए जाने वाले विषैले साँपों में आस्ट्रेलिया में पाया जाने वाला आस्ट्रेलियन ब्राउन स्नेक 4–7 फुट लंबा होता है। इसी देश का डेथ एडर लगभग 3 फुट लंबा होता है। अफ्रीका का ब्लैक माम्बा सांप लगभग 14 फीट लंबा होता है, इसके मुँह का भीतरी हिस्सा काला होता है। यह सर्वाधिक जहरीले साँपों में से एक है। अफ्रीका में ही पाए जाने वाले बूम स्लैंग जाति के साँप लगभग 6 फुट लंबे होते हैं। दक्षिण अफ्रीका में पाया जाना वाला स्पिटिंग कोबरा लगभग, 5–7 फुट लंबा होता है, यह शत्रु पर विष की धार फेंकता है। दक्षिण अफ्रीका का ही पीत नाग (यलो कोबरा) लगभग 7 फुट लंबा होता है और यह कोबरा जाति के साँपों में सर्वाधिक विषैला होता है। अमेरिका के टेक्सास क्षेत्र में मिलने वाला कॉपर हेड सांप लगभग 4 फुट लंबा होता है। कनाडा के दक्षिणी क्षेत्रों में पाया जाने वाला प्रवाल सर्प (कोरल स्नेक) लगभग 2–5 फुट लंबा होता है। यूरोप में मिलने वाला यूरोपियन वाइपर लगभग 1–3 फुट लंबा होता है। पश्चिमी देशों में पाया जाने वाला रैटल सर्प लगभग 2–6 फुट लंबा होता है। यह चलने पर ध्वनि उत्पन्न करता है।

उत्तरी अमेरिका में लैंप्रोपेल्टिस जाति का 'मुसुराना' (किंग स्नेक) नामक विषहीन साँप पाया जाता है, जो लगभग 7 फुट लंबा होता है और यह 6–6.5 फुट लंबे विषैले सर्पों को निगल जाता है। यह रात्रिचर है।

मुसुराना के अंदर एक ऐसा तत्व मिलता है जिससे इस पर अत्यंत विषैले और घातक साँपों के विष का प्रभाव नहीं पड़ता है। मुसुराना का मुख्य प्रतिद्वंद्वी रैटल स्नेक है। रैटल स्नेक अपने जहरीली दाँतों से मुसुराना पर हमला करता है, लेकिन मुसुराना की विष–प्रतिरोधक क्षमता इतनी अधिक होती है कि रैटल स्नेक के सभी वार व प्रयास विफल हो जाते हैं। तब रैटल स्नेक थक कर सुस्त हो जाता है तब मुसुराना उसे पूरा निगल जाता है।

साँप में दाँतों की 6 पंक्तियाँ होती हैं। दो पक्तियाँ नीचे के जबड़े में, दो ऊपर के जबड़े में तथा दो पंक्तियाँ तालु में होती हैं। दांत सुई के समान नुकीले तथा भीतर की ओर झुके हुए होते हैं। अतः ये दाँत की पकड़ में आए हुए शिकार को मुखगुहा के बाहर नहीं निकलने देते हैं। विषैले साँपों में तालु से लगे एक या दो जोड़ी विशेष रूप से लंबे होते हैं और ये ही विष के दाँत होते हैं। ये दांत दवा देने वाली सूई की तरह भीतर से खोखले होते हैं, जिनसे होकर विष मनुष्य के शरीर में चला जाता है। साँप का विष क्रीम जैसा पीले रंग का, स्वादहीन व गंधहीन होता है। साँप का विष कई विषैले तत्वों, एंजाइम व प्रोटीन से मिलकर बनता है। वास्तव में साँप का जहर लार में होता है और इसे साँप की लार–ग्रंथियां बनाती हैं। आत्मरक्षा के लिए जब साँप काटता है तो उसके दाँत विष छोड़ देते हैं। नाग, कैरत, प्रवाल सर्प तथा समुद्री साँपों का विष तंत्रिका–तंत्र तथा घोणस साँप का विष रक्त–संचार तंत्र को प्रभावित करता है।

साँप अनियततापी जंतु हैं। ठंड के मौसम में ये अपने बिल में कई महीने तक बिना भोजन किए ही रहते हैं। साँप अपना बिल स्वयं नहीं बनाते हैं, ये चूहे के बिल में उसे मारकर रहते हैं या चूहे स्वयं इनके डर से बिल छोड़कर भाग जाते हैं। साँप पेड़ों, जंगलों, पानी, गीली मिट्टी, कीचड़ तथा समुद्री साँप समुद्र तटों के किनारे बिलों में रहते हैं। नागराज (किंग कोबरा) घोसला बना कर रहता है।

साँप अपना भोजन नहीं चबाते। वे भोजन को पूरा निगल जाते हैं। इनके मुँह की माँसपोशियाँ लचीली रबड़ की तरह फैल सकती हैं जिनकी मदद से वे बड़े से बड़े जानवर को निगल सकते हैं।

साँप के बाह्यकर्ण नहीं होते हैं। इनमें केवल आभ्यंतर कर्ण होते हैं। सपेरा जब बीन बजाता है तो बीन को घुमा–घुमाकर साँप के चेहरे के पास ले जाता है। साँप को लगता है कि उस पर हमला होने वाला है और वह फन उठाकर सचेत हो जाता है, और हम लोगों को ऐसा लगता है कि वह नाचने वाला है। बाह्यकर्ण न होने के कारण वह बार–बार जीभ लपकाकर हवा से गंध–कण उठाता है। साँप ठीक से देख नहीं पाते हैं। साँप की आँखों के पास बहुत बारीक छेद होते हैं, जिनसे वे किसी भी चीज का अहसास कर लेते हैं।

साँप के गले में ध्वनि–उत्पादक रज्जु मौजूद नहीं होती, जिस कारण साँप किसी प्रकार की आवाज उत्पन्न नहीं कर पाता। साँप केवल अपने फेफड़े से हवा फेंककर फुफकार ही मार सकता है। साँपों के शरीर में टाँगे नहीं होतीं। वे अपनी पसलियों को हिलाकर चलते हैं।

कुछ साँप उड़ भी सकते हैं। उड़ने के लिए वे अपने शरीर से सारी हवा बाहर निकाल लेते हैं, शरीर को चपटा कर फैला लेते हैं और एक पेड़ से दूसरे पेड पर विसर्पण (ग्लाइड) करते हुए पहुँच जाते हैं।

साँप के पूरे शरीर पर शल्कों का आवरण होता है जिसे वे केंचुली के रूप में हर वर्ष उतार फेंकते हैं। क्योंकि इनकी लंबाई हर वर्ष बढ़ती हैं, अतः शल्क कवच सिकुड़ जाता है और केंचुली फैलने लगती है। यह केंचुली शरीर पर एक जैकेट के समान चढ़ी रहती

हैं, अतः वृद्धि में रुकावट पड़ती है, क्योंकि कवच बढ़ता नहीं है। पुरानी त्वचा के नीचे नई त्वचा बनने लगती है और पुरानी त्वचा धीरे–धीरे ढ़ीली होने लगती है। साँप अपना सिर किसी खुरदरे पत्थर या शाखा पर तब तक रगड़ता है, जब तक केंचुली में एक छिद्र नहीं हो जाता। यह अपना सिर उस छिद्र से बाहर निकाल लेता है, फिर यह अपनी पेशियों को बार–बार सिकोड़ता है और उस केंचुली को पीछे ढकेल कर तथा भूमि के सहारे रगड़ कर अपने शरीर को उस खोल में से बाहर घसीट लेता है। इस तरह बाहरी आवरण से केंचुली उतरकर शरीर से अलग हो जाती है। केंचुली त्याग करते समय इनके आँखों की झिल्ली अपारदर्शक हो जाती है जिससे साँप कुछ समय के लिए अंधा हो जाती है।

साँपों में नाग, करैत व प्रवाल सर्प अंडे देते हैं जबकि घोणस और समुद्री साँप बच्चे देते हैं। साँप के अंडे काफी सख्त होते हैं। इस सख्त अंडे को तोड़ने और उससे बाहर निकलने के लिए साँप के बच्चों की नाक पर एक छोटा नुकीला दाँत होता है जिसे ऐम टूथ कहते हैं।

साँप के काटने पर प्राथमिक चिकित्सा

साँपों के काटने से हर वर्ष लगभग 15000 लोगों की मृत्यु हो जाती है। सर्पदंश के बाद उनके दाँतों के निशान बन जाते हैं। यदि निशान छोटे हों तो वह विषहीन सर्प द्वारा काटा गया है, यदि दो बड़े दाँतों के निशान हो, काटे हुए स्थान पर दर्द, रक्तस्राव और उसके आस–पास की त्वचा हरी या नीली पड़ जाए समझिए कि विषैले सर्प ने काटा है। सर्पदंश के बाद सर्वप्रथम काटे हुए स्थान से ऊपर की ओर 10–10 सेमी पर बहुत कस कर किसी बंधन से बांध देना चाहिए जिससे विषैला खून शरीर में न फैल सके। काटे हुए स्थान पर 1 इंच लंबा तथा 1 इंच चौड़ा धन (+) के आकार का चीरा लगना चाहिए तथा विषैले खून को अधिक से अधिक मात्रा में बाहर निकाल देना चाहिए। घाव को पोटैशियम परमैंगनेट (लाल दवा) से धोकर घाव में पाटैशियम परमैंगनेट भर देना चाहिए। साँप द्वारा काटे हुए व्यक्ति को सोने नहीं देना चाहिए। ऐसे व्यक्ति को जितनी जल्दी हो अस्पताल ले जाना चाहिए। यदि काटे हुए साँप का रंग, रूप आकार आदि ज्ञात हो तो उसे चिकित्सक को बताना चाहिए जिससे रोगी के उपचार में अधिक मदद हो सके।

नवीन शोध–

साँप के विष से बचने के लिए जो दवा या प्रतिजीवविषा (antivenin) तैयार की जाती है उसे घोड़े के खून से तैयार किया जाता है, जोकि घोड़ों के लिए काफी यातनापूर्ण है। अब एक नई खोज के अनुसार बेंगलूर स्थित विट्ठल मल्या शोध संस्थान के वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों के निष्कर्ष के आधार पर एक नई तकनीक को खोजा है, जिसमें मुर्गी के अंडे से साँप के विष का प्रभाव समाप्त करने वाला रसायन निकालकर इंजेक्शन के माध्यम से उस व्यक्ति को दिया जाएगा जिसे साँप ने काटा हो। इस तकनीक में मुर्गी के चूजों को 28 दिन की उम्र में रोगों से लड़ने के टीके लगाए जाएंगे। जब ये चूजे 84 दिन के होगें तो इन्हें विष की बहुत मामूली मात्रा दी जाएगी। जब चूजा 140 दिन का होगा, तब उसका शरीर विष से लड़ने में सक्षम हो जाएगा। इस तरह से इस तकनीक से दवा बनाना सस्ता पड़ेगा क्योंकि एक मुर्गी प्रत्येक वर्ष लगभग 250 अंडे देती है और एक अंडे से लगभग 5 मिलीग्राम दवा बनाई जा सकती है और यह मात्रा सर्पदंश से ग्रसित मनुष्य को बचाने के लिए पर्याप्त होगी। अभी इस तकनीक का प्रयोग प्रयोगशाला स्तर पर किया जा रहा है। यदि यह सफल होती है तो विश्व में पहली बार मुर्गी के अंडे से साँप के विष से बचाव किया जा सकेगा। चिकित्सा–जगत् में साँपों के विष का बहुत अधिक महत्व है। पिछले कुछ समय से ऐसे साँपों की संख्या दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है जिनसे चिकित्सकीय कार्यों के लिए विष उपलब्ध होता है।

विषैले साँपों में से बहुत से ऐसे हैं जिनका विष केवल चूहों, मेढ़कों एवं चिड़ियों आदि पर ही प्रभाव डालता है जबकि मनुष्यों पर इनके विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। भारत में मुख्यतः नाग, क्रकचशल्की घोणस, रसल घोणस एवं करैत ही ऐसे साँप हैं जो मनुष्यों के लिए घातक हैं। इन साँपों के काटने से भी घबराना नहीं चाहिए, क्योंकि अब इनके विष का उपचार भी आसानी से हो जाता है। यह बहुत ही हैरानी की बात है कि बहुत से लोग ऐसे है जो साँप के काटने से नहीं बल्कि साँप के भय से मर जाते हैं।

इस संसार में साँपों का रहना पर्यावरण की दृष्टि से बहुत आवश्क है, क्योंकि ये हानिकारक कीड़े–मकोड़ों व जीव जंतुओं को खाते हैं जिससे पारिस्थितिक संतुलन बना रहता है। सामान्यतः साँप तब तक किसी को नहीं डसते जब तक कि उन्हें छेड़ा न जाए। अतः केवल डर या किसी अन्य कारणों से इन्हें मारना नहीं चाहिए।

***

विज्ञान समाचार

दिल का हाल बताएगा डिजिटल प्लास्टर

दीपक कोहली

दिल के मरीजों को भारी भरकम मशीनों के भंवर–जाल से आजादी मिल सकेगी। वैज्ञानिक एक क्रांतिकारी वायरलेस 'डिजिटल प्लास्टर' विकसित करने के करीब हैं। इससे दूरदराज से ही चौबीसों घंटे मरीज के दिल का हाल जाना जा सकेगा।

इंपीरियल कॉलेज ऑफ लंदन के शोधकर्ताओं के अनुसार एक डिस्पोजेबल नन्हा उपकरण मरीज के सीने में चिपका दिया जाएगा जो कई दिनों तक लगातार काम करता रहेगा। कुछ दिनों बाद इसे बदल दिया जाएगा ताकि संक्रमण की आशंका से बचा जा सके। अति अल्पशक्ति संवेदक (अल्ट्रा लो पॉवर सेंसर) युक्त यह उपकरण एक सिलिकॉन चिप में फिट होगा। इससे मरीज के शरीर का तापमान, दिल की धड़कन और श्वसन गति की निगरानी संभव होगी। चिकित्सक सिर्फ मोबाइल फोन की मदद से मरीज के स्वास्थ्य के आंकड़े डाउनलोड कर सकेंगे। इससे शोधकर्ता/चिकित्सक दिल के रोगियों को आपात स्थिति में दवा या उपचार उपलब्ध करा पाएंगे। विशेषज्ञ आंकड़ों की मदद से तमाम ऐसी बातें भी जान पाएंगे जो मरीज चिकित्सक को समझा नहीं पाता। मुख्य शोधकर्ता क्रिस टाउमजाउ के अनुसार इससे लाखों दिल के रोगियों को हार्ट अटैक या सर्जरी से बचाया जा सकेगा। रोगियों को बार–बार अस्पताल जाकर जाँच करवाने से आजादी मिलेगी। शोधकर्ता डायबिटीज और अन्य गंभीर रोगों के उपचार में भी इस तकनीक के इस्तेमाल की संभावनाएं खंगाल रहे हैं।

9

नोनी : शक्तिदायी, स्वास्थ्यवर्धक, औषधीय पेय

डॉ. नवीन कुमार बोहरा

आधुनिक युग में अंग्रेजी (ऐलोपेथिक) दवाइयों के बढ़ते दुष्प्रभावों के मद्देनजर प्राकृतिक रूप से प्राप्त वानस्पतिक औषधियों के प्रयोग से निश्चित रूप से इतर प्रभाव (साइड इफक्ट) नहीं होते तथा वे आसानी से एवं कम खर्च में उपलब्ध हो जाती हैं। अनेक पादपों से प्राप्त औषधियां कई असाध्य रोगों के उपचार में उपयोगी सिद्ध हुई हैं तथा इन्हीं की कड़ी में एक पादप जुड़ गया है जिसका नाम है "नोनी"।

नोनी को वानस्पतिक भाषा में **मोरिन्डा सिट्रीफोलिया** कहते हैं। यह कुल रूबियेसी का पादप है। इसे "हॉग ऐपल" चीज फल, लैड, दर्द-निवारक वृक्ष, भारतीय शहतूत आदि नामों से भी जाना जाता है। इसे तमिल में वेन–नूना, हिंदी में आच, आक, आल आदि उपनामों से, मलयालम में कट्टापिट्लवम्, मनतातट्टी, तेलुगु में मद्दी, मोगली, मोलुगु, मुलुगु आदि उपनामों से जाना जाता है। "नोनी" का पेड़ 20 फुट तक ऊँचाई वाला होता है जिसमें बड़े आकार की सदाबहार हरी पत्तियां व छोटे–छोटे सफेद रंग के फूल लगते हैं जो कि बाद में छोटे–छोटे ऊबड़–खाबड़, फलों में बदल जाते हैं। यह सामान्यतः उष्णकटिबंधीय स्थानों में उगता है। आस्ट्रेलिया में इसे "चीज फल", बर्मा में "नोना" तथा केमान (cayman) द्वीप मे इसे "फॉगी ऐप्पल" के नाम से जाना जाता है। भारत में यह पश्चिमी घाटों में बहुतायत में उगता और भारतीय शहतूत के नाम से जाना जाता है। आयुर्वेद एवं सिंध के प्राचीन चिकित्सकीय लेखों में इसका उल्लेख मिलता है तथा ऐसा माना जाता है कि पूर्व में तमिलनाडु के हर एक मंदिर में इसको तुलसी, बेल आदि के साथ आवश्यक रूप से उगाया जाता था। ऐसी मान्यता है, कि इसमें देवताओं या देवी का निवास होता है। नोनी पर शोध करते हुए संयुक्त राज्य अमेरिका के "अनन्नास शोध संस्थान" के डॉ. राल्फ हैन्की ने सर्वप्रथम "नोनी" के उस क्रिस्टलीय पदार्थ को अलग किया जोकि **जेरोनीन** नामक रसायन बनाने के लिए जरूरी होता है। जेरोनीन मनुष्य में प्रोटीन को पचाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इन्हीं के परिणामस्वरूप शरीर की विभिन्न कोशिकाओं की कार्यप्रणाली एवं संरचना नियमित होती है। इसी प्रकार 1964 से 1980 के बीच किए गए वैज्ञानिक अध्ययनों से नोनी के पीड़ाहारी गुणों का पता चला तथा इसके परिसंचरण, पाचन एवं श्वसन–तंत्रों में लाभकारी होने का पता चला। इसे त्वचा के संघटन को सुधारने एवं केश–वृद्धि में उपयोग माना गया है।

1933 में अनन्नास शोध संस्थान में ही डॉ. राल्फ हैन्की ने इसमें से "डेमनकान्थाल" यौगिक को अलग किया जो प्री–कैन्सर कोशिकाओं में सामान्य कोशिका वृद्धि–लाने में समर्थ था। इन्हीं निष्कर्षों के आधार पर हवाई विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक मि. ए. हीराजुमी ने नोनी की कैन्सर–रोधी गतिविधि को चूहों पर सिद्ध किया। इसके पश्चात् जापान की शोध टीम ने "नोनी" के "डेमनकान्थाल" यौगिक द्वारा आर एस ए–वर्णित

कोशिकाओं में सामान्य फीरोटाइटस को ला सकने की क्षमता पर अध्ययन किया है। वर्तमान में विश्व के लगभग 30 से ज्यादा विश्वविद्यालयों यथा हवाई, जापान के किओ एवं ओसाका, बेल्जियम के आन्टवर्थ विश्वविद्यालय एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के राटजर्स–एन.जो. आदि विश्वविद्यालयें में उच्चस्तरीय शोध "नोनी" पर किए जा रहे हैं। "नोनी" से शरीर में थाइराइड हॉर्मोन उत्पादन बढ़ाने में सहायता मिलने की सूचना भी प्राप्त हुई है। इसमें विटामिन A, B, B_2, B_6, B_{12}, विटामिन C एवं E के साथ कैल्सियम, आयरन, नियासिन, फोलिक अम्ल, पेन्टोथेनिक अम्ल, फॉस्फोरस, मैगनीशियम, जिंक, कॉपर एवं अन्य खनिज के अतिरिक्त क्रोमियम, मैगनीज, सोडियम, मॉर्लिब्डनम, पोटेशियम आदि पाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें कार्बोहाइड्रेट एवं प्रोटीन भी पाया जाता है।

"नोनी" एक औषधि न होकर **आहार–संपूरक** है जो विभिन्न रोगों के रोगाणुओं से शरीर को सुरक्षित रखने में सहायक है। "नोनी" पर 10 देशों के 30 विश्वविद्यालयों में शोध चल रहा है तथा "डिस्कवरी चैनल" पर 3 फरवरी 2003 को प्रसारित "टुडे हैल्थ प्रोग्राम" में इसे विश्व की सबसे पोषाहार खोज बताया गया है। नोनी की विभिन्न रोगों में उपयोगिता इस प्रकार है :–

1. **नोनी प्रति–आक्सीकारक (एन्टी ऑक्सीडेन्ट) के रूप में:** आधुनिक युग में खानपान एवं वातावरण प्रदूषण के कारण हमारे शरीर में अनेक आविष (टॉक्सिन) एवं प्रदूषक तत्व आ जाते हैं जो शरीर की कोशिकाओं में फैलकर खतरनाक हो सकते हैं। नोनी को हमारे शरीर में इन आविषों एवं प्रदूषकों का सफाया करने में सक्षम पाया गया है।
2. **मुँह के रोगों में** नोनी में उपस्थित "प्रोजेरोनीन" मसूड़ों के शोध (जिंजीवाइटिस) में तथा संक्रमित दाँत के दर्द में राहत देता है।
3. **पाचन में** नोनी से पाचक एन्जाइमों को बल मिलता है तथा यह परजीवी कीटाणुओं को कम करने में सहायक होता है।
4. **यकृत रोगों** में यह यकृत के एन्जाइमों को ठीक ढ़ंग से रक्त की सफाई करने के लिए बल प्रदान करता है। यह एन्जाइमों की ज्यादा मात्रा को नियंत्रित करता है तथा हॉर्मोन में संतुलन स्थापित करता है।
5. **मधुमेह में** नोनी के रक्त शर्करा को नियंत्रित करने में सहायक होने से इसे मधुमेह के रोगियों के लिए एक अच्छे एवं पौष्टिक हर्बल औषधि मय संपूरक खाद्य के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।
6. **संक्रमण रोगों में** नोनी "T" कोशिकाओं के उत्पादन को तथा T मारक कोशिकाओं की क्रियाशीलता को उद्दीप्त करता है। इसे मानव प्रतिरक्षा न्यूनता विषाणु (HIV) संक्रमण में भी उपयोगी पाया गया है।
7. **मूत्र रोगों में** नोनी से प्रोस्टेट कैन्सर में राहत मिलने के शोध के अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं। यह दर्दयुक्त/अनियमित अथवा अधिक माहवारी में भी उपयोगी है।
8. **दर्द में** नोनी चिरकारी वेदना (क्रोनिक पेन) एवं जलन में उपयोगी है तथा एस्पिरिन, ब्रुफेन आदि के प्रयोग से होने वाले हानिकारक प्रभावों के विपरीत उपचारक के रूप में कार्य करता है।

नोनी को गठिया, हृदय रोगों, उच्च रक्तचाप आदि में भी उपयोगी पाया गया है। इसे अवसाद–ग्रस्त रोगियों के लिए भी उपयोगी पाया गया है। नोनी पर इन सभी के बारे में विस्तृत शोध किया जा रहे हैं जिससे इसे अधिक उपयोगी बनाया जाए। इसका उपयोग चिकित्सक की सलाह से करना उपयुक्त रहता है।

नोनी के बारे में जनश्रुति डायना फेयरी चाइल्ड ने अपनी पुस्तक "नोनी" में उस कहानी का उल्लेख किया है जिसमें अर्ध–ईश्वर मॉई (Demi God Maui) का पार्थिक शरीर नए जीवन के लिए, साथ वापस जाने के लिए नोनी की पत्तियों को रखा गया था। उसने यह भी लिखा कि ज्वालामुखी की देवी "पेले" का संबंध नोनी से है क्योंकि नोनी के पेड़ों को बचाने के लिए एक बड़े द्वीप से होकर बहने वाला "लावा" भी रास्ता बदल देता था, ऐसी किंवदंती है।

आधुनिक युग में वैज्ञानिक एवं पारंपरिक तरीकों से "नोनी" को अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। नोनी से बने कई उत्पाद बाजार में आने शुरू हो गए हैं तथा आने वाले वर्षों में यह हर्बल उत्पादन और अधिक उपयोगी बनेगा, ऐसी उम्मीद है।

***

विज्ञान समाचार

ब्रह्मांड के किसी कोने में पैदा हो रहे अन्यस्थानी ग्रह

दीपक कोहली

अन्यस्थानी ग्रहों के अस्तित्व पर अब शायद आपको भी यकीन हो जाए क्योंकि कनाडाई खगोलविदों ने इतिहास में पहली बार हमारे खगोलमंडल की आकाशगंगा के अलावा किसी दूसरी आकाशगंगा में भी ग्रहों के निशान मिलने का दावा किया है। हमारी आकाश गंगा में आए दिन नए ग्रहों की खोज होती रहती है। खगोलविद् अब तक कुल 403 ग्रहों को देखने का दावा कर चुके हैं। लेकिन हमारी आकाशगंगा से इतर किसी दूसरी आकाशगंगा में ग्रहों की मौजूदगी पहली बार स्पष्ट हो सकी है। टोरन्टो विश्वविद्यालय के अनुसंधान दल ने पृथ्वी से 10 अरब प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित एक गैलेक्सी का अध्ययन करते हुए, वहां विभिन्न ग्रहों के विकास की पुष्टि की है। इससे यह साबित होता है कि समय बीतते ब्रह्मांड में ग्रहों के विकास की प्रक्रिया भी बदलती रही है। प्रमुख शोधकर्ता रॉबर्ट अब्राहम ने आकाशगंगा से निकलने वाले प्रकाश का विश्लेषण किया। उन्होंने पाया कि चमकीले तारों में से लधु तंरगदैर्घ्य (वेव लेंग्थ) का प्रकाश निकला, जबकि उनके बीच मौजूद धूल के कणों से दीर्घ तरंगदैर्घ्य का प्रकाश आ रहा था।

10

मोटापे के दुष्प्रभाव

डॉ. जे.एस. अग्रवाल

मोटापे की समस्या विश्वभर में बढ़ रही है अमेरिका में तो 60 प्रतिशत वयस्कों का वजन ज्यादा है, या वे मोटे हैं। कुछ समय पूर्व तक देश में मोटापा संपन्न वर्ग में ही होता था, पर अब यह हर आयु, व वर्ग की समस्या बन गया है। मोटे व्यक्ति न सिर्फ अनाकर्षक होते हैं, बल्कि इनमें अनेक गंभीर, दीर्घकालीन रोगों का खतरा बढ़ जाता है।

मोटापे का निर्धारण

शरीर में वसा ऊतकों में वसा (ट्राइग्लिसराइड) जमा होती है, यह जरूरत पड़ने पर ऊर्जा प्रदान करती है, त्वचा को कोमल बनाती है, तापमान नियंत्रण में मदद करती है। शरीर में वसा की मात्रा पुरुषों में शरीर के वजन की 12 से 18 प्रतिशत और महिलाओं में 18 से 24 प्रतिशत सामान्यतः होती है। जब शरीर में वसा की मात्रा पुरुषों में 20% प्रतिशत और महिलाओं में 25% से ज्यादा हो जाती है तो यह मोटापा कहलाता है।

मोटापे का पता कद और वजन सारणी से हो सकता है। यदि शरीर का वज़न आयु लंबाई के मानक वजन से 10–20 प्रतिशत ज्यादा है तो ज्यादा वजन, 20–39.9% ज्यादा होने पर हल्के मोटे, 40–99.9% ज्यादा होने पर मध्यम मोटे और 100% ज्यादा होने पर अत्यधिक मोटे माने जाते हैं। परंतु लंबाई के अनुसार वजन से शरीर में वसा की मात्रा और और इसके दुष्प्रभावों का सही प्रकार से आकंलन नहीं हो पाता।

मोटापे के दुष्प्रभाव का घनिष्ठ संबंध बॉडी मास इन्डेक्स (बी.एम.आई.) से होता है। बी.एम.आई. की गणना मीटर में लंबाई और किलोग्राम में वजन से की जाती है।

$$\text{बी.एम.आई.} = \frac{\text{वजन (किलोग्राम)}}{\text{(लंबाई मीटर)2}}$$

25 कि.ग्रा. मी^{2} बी.एम.आई सामान्य मानी जाती है, 25 से 29.9, वजन ज्यादा होना, 30 से 34.9 हल्का मोटापा, 35 से 39.9 मध्यम मोटापा और 40 से अधिक अत्यधिक मोटापा माना जाता है। बी.एम.आई. बढ़ने के साथ ही विभिन्न रोगों के खतरे भी बढ़ते जाते हैं।

शोधों से ज्ञात हुआ है कि विभिन्न रोगों का संबंध ज्यादा वसा जमा होने के स्थान के अनुसार भी होता है, यदि ज्यादा मात्रा में वसा ऊपरी हिस्से में होता है तो विभिन्न रोगों का खतरा शरीर के निचले हिस्से में जमा वसा से ज्यादा होता है।

इसका पता कमर–कूल्हे के घेरे के अनुपात से लगाया जा सकता है, पुरुषों में यह अनुपात 1 और महिलाओं में 0.9 से कम होना चाहिए। यदि पुरुषों की कमर 102 से.मी. (40 इंच) और महिलाओं की कमर 88 से.मी. (35 इंच) से ज्यादा है तो विभिन्न रोगों का खतरा बढ़ जाता है, सतर्क हो जाएं।

मोटापे की प्रक्रिया

मूल रूप से जब कोई व्यक्ति खर्च हो रही कैलोरी से ज्यादा कैलोरी युक्त भोजन का सेवन करते

हैं तो अतिरिक्त कैलोरी 'ट्राइग्लिसराइड' वसा में परिवर्तित होकर वसा कोशिकाओं में जमा होने लगती है, जिसके कारण इनका आकार बढ़ता है। यदि जमा वसा की मात्रा वसा कोशिकाओं से ज्यादा हो जाती है तो फिर नई वसा कोशिकाएँ भी बनने लगती हैं, और वजन बढ़ता है।

भूख का अहसास और भोजन की मात्रा पर नियंत्रण मुख्यतः मस्तिष्क के अधश्चेतक (हाइपो थैलेमस) अंश में मौजूद 'भूख केंद्रक' और 'तृप्ति केंद्रक' द्वारा होता है। इन केंद्रकों को शरीर के विभिन्न हिस्सों से निरंतर सूचनाएं प्राप्त होती रहती हैं। जब शरीर में ऊर्जा की कमी होने लगती है तो 'भूख केंद्रक' सक्रिय हो जाता है, और भूख का अहसास होता है। जब जरूरत की मात्रा में भोजन कर लिया जाता है तो 'तृप्ति केंद्रक' सक्रिय होकर 'भूख केंद्रक' को शांत कर देते हैं, और भोजन करना रोक देते हैं, तृप्ति महसूस होती है। इन केंद्रकों को ये सूचनाएँ शरीर के विभिन्न स्नायु, अनेक रसायनों द्वारा प्राप्त होती हैं।

यदि भूख पर नियंत्रण नहीं होता, ज्यादा मात्रा में भोजन करने लगते हैं जो वजन बढ़ता है। कुछ परिस्थितियों में मोटापा शरीर में ऊर्जा को सुचारु रूप से उपयोग न कर पाने के कारण भी होता है।

वसा कोशिकाएँ भी 'लेप्टिन हॉर्मोन' स्रावित करती हैं। इनके प्रभाव से तृप्ति केंद्रक सक्रिय हो जाता है। यदि लेप्टिन हॉर्मोन स्रावित नहीं होता है, या यह प्रभाव हीन हो जाता है तो भी मोटे हो सकते हैं। ओ.बी. जीनं में प्रभाव असामान्य होने पर भी मोटापा हो सकता है। कुछ अन्य जीवों को भी पहचाना गया है जिसकी असामान्यता के कारण मोटे हो सकते है। वैज्ञानिकों के अनुसार मोटे होना जीवन में बदलाव, आदतों और वातावरण में जटिल अंतःक्रिया के परिणामस्वरूप होता है।

कभी कभी कुछ अंतःस्रावी ग्रंथियों से हॉर्मोन स्राव में असामान्यता होने–जैसे थॉयरायड हॉर्मोन, ग्रोथ, हॉर्मोन की कमी, कॉर्टिसोन की अधिकता इत्यादि या अधश्चेतक के क्षतिग्रस्त होने, अबुर्द (टयूमर) होने इत्यादि कारणों से भी हो सकता है, पर इनकी संख्या मोटे लोगों में लगभग 3 प्रतिशत ही होती है।

आधुनिक युग में मोटापे के बढ़ते प्रकोप का कारण ज्यादा कैलोरी, वसा–युक्त भोजन का सेवन करना, आधुनिक जीवन शैली में सहायक साधनों, उपकरणों, रिमोट इत्यादि के कारण सक्रियता में कमी, व्यायाम न करना, टी.वी. देखना, कंप्यूटर पर कार्य करना, फॉस्ट फूड सेवन करना, तथा बढ़ते मानसिक तनाव या अवसाद के कारण ज्यादा मात्रा में भोजन करना हैं।

मोटापे के दुष्प्रभाव

मोटापे के कारण व्यक्तित्व प्रभावहीन, अनाकर्षक हो जाता है और वह उपहास का पात्र बन सकता है। ये हीन भावना का शिकार हो सकते हैं। साथ ही मोटे व्यक्तियों में अनेक शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक, सामाजिक समस्याएँ हो सकती हैं।

- मोटे लोगों की औसत आयु, सामान्य वजन वालों की अपेक्षा कम होती है। इनकी अचानक मौत का खतरा ज्यादा होता है।
- मोटे होने पर वयस्कों में होने वाली टाइप–2 मधुमेह की संभावना ज्यादा है। सभी मोटे व्यक्तियों में कोशिकाएँ इंसुलिन हॉर्मोन के प्रति कम संवेदनशील हो जाती हैं जिसके कारण मधुमेह हो सकता है। करीब 80% मधुमेह– टाइप–2 ग्रस्त मरीज मोटे होते हैं। यदि ये वजन कम करते हैं तो रोग पर नियंत्रण बेहतर हो जाता है।
- वजन ज्यादा होने से उच्च रक्तचाप की संभावना ज्यादा होती है।
- मोटे व्यक्तियों में, विशेषकर यदि शरीर के ऊपरी हिस्सों में ज्यादा वसा जमा है तो रक्त

760 HRD/13—4A

में ट्राइग्लिसराइड, कोलेस्टरॉल, एल.डी.एस. कोलेस्टेरॉल स्तर कम होता है, जिनके कारण धमनियों के सख्त होने की प्रक्रिया कम आयु में शुरू होकर तेज गति से होती है। मोटापा धमनी–काठिन्य (ऐथिरोस्क्लेरोसस), हार्टअटैक, पक्षाघात इत्यादि रोगों का मूल कारण है।

- अनेक अध्ययनों से सिद्ध हुआ है कि महिला, पुरुष दोनों के ही मोटे होने पर उनमें हृदयधमनी रोग (एन्जाइना, हार्टअटैक) पक्षाघात, हृद्पात (हार्ट फेल्योर) का खतरा बढ़ जाता है।
- मोटे पुरुषों में टेस्टोटेरॉन हार्मोन स्तर कम और एन्ड्रोजन हॉर्मोन स्तर बढ़ जाता है, इनमें स्तन का आकार बढ़ जाता है, नपुंसकता की संभावना ज्यादा हो जाती है। यदि महिलाएं मोटी हैं तो इनमें पुरुषत्व हार्मोन 'पुंजन' या एन्ड्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है, जोकि ऊतकों में एस्ट्रोजन हार्मोन में बदलता है। अतः रजोनिवृत्ति के पश्चात् स्तन, गर्भाशय के कैंसर का खतरा बढ़ जाता है। मोटी महिलाओं में गर्भ दिक्कत से ठहरता है। यदि गर्भवती हो जाती हैं, तो गर्भावस्था, प्रसव के दौरान विषमताएं होने की संभावना ज्यादा होती है। महिलाओं में मासिक धर्म में अनियमितताएं हो सकती हैं।
- मोटे व्यक्तियों में आमाशय के अम्लीय स्राव के ऊपर आने के कारण ग्रासनली के क्षतिग्रस्त होने से जलन, खट्टी डकारें, पेट दर्द की समस्याएं हो सकती हैं। इनके यकृत में भी वसा जमा होने से यकृत क्षतिग्रस्त हो सकता है। यदि यह व्यक्ति वजन कम करते हैं तो हालत में सुधार होने लगता है।
- मोटे व्यक्तियों में वजन के कारण श्वास लेते समय पेशियों को ज्यादा शक्ति से संकुचित होना पड़ता है, कार्य–क्षमता कम हो जाती है, आसानी से सांस फूलती है, रक्त में ऑक्सीजन की मात्रा कम और कॉर्बन डाइऑक्साइड की मात्रा ज्यादा हो सकती है।
- मोटे व्यक्तियों में श्वसन–मार्ग के आस–पास वसा जमा होने के कारण सोते समय श्वास मंद हो सकती है या रुक सकती है। यह रोग निद्रा अश्वसन (स्लीप एपनिया) कहलाता है। ये सोते समय तेज खर्राटे लेते हैं, रात को बार–बार नींद खुलती है, जिसके कारण सुबह सरदर्द होता है, तरोताजा महसूस नहीं करते, दिन में मौका मिलते ही सो जाते हैं, खर्राटे लेते हैं। निद्रा–अश्वसन के कारण उच्च रक्तचाप, हृदयपात, अचानक मौत इत्यादि का खतरा भी बढ़ जाता है।
- मोटे व्यक्त्यिों में पित्त नली में कोलेस्टेरॉल ज्यादा मात्रा में स्रावित होता है, जोकि पित्ताशय में पथरी बना सकता है। यदि वजन सामान्य से 50% ज्यादा है तो पित्ताशय पथरी की संभावना 6 गुना ज्यादा होती है। यदि मोटे व्यक्ति कड़ाई से आहार–नियंत्रण (डायटिंग) करते हैं तो पित्ताशय/पित्तनली में संक्रमण की संभावना बढ़ जाती है।
- मोटापे के कारण बड़ी आंत, मलाशय, यकृत, अग्न्याशय, पित्ताशय, पित्त नली के कैंसर, पुरुषों में प्रोस्टेट ग्रंथि तथा महिलाओं में स्तन, गर्भाशय, अंडाशय, गर्भाशय ग्रीवा कैंसर की संभावना ज्यादा होती है। विभिन्न अध्ययनों से पता लगा कि पुरुषों में मोटापा कुल कैंसर के 14% और महिलाओं में करीब 20% कैंसर के लिए जिम्मेदार होता है।
- मोटे व्यक्तियों में वजन के कारण जोड़ों पर ज्यादा ज़ोर पड़ने से जोड़ों में विकृतियाँ हो सकती हैं। इनमें अस्थि संधि शोध (ऑस्टियरयो आर्थ्राइटिस), विशेष कर टखने, कूल्हे, हाथों के जोड़ों मे, कम उम्र में हो सकता है। 36 वर्ष की आयु में मोटी महिलाओं में अस्थि संधि शोथ की संभावना करीब

760 HRD/13—4B

2.1 गुना और पुरुषों में 1.5 गुना और अत्यधिक मोटे पुरुषों में 1.9 गुना और महिलाओं को करीब 3.2 गुना ज्यादा होती है। मोटे व्यक्तियों में 'कूल्हे की हड्डी टूटने, तथा चपटा पाद अर्थात् तलुए सीधे होने (फ्लैटफुट) की संभावना भी बढ़ जाती है।

- मोटे व्यक्तियों में त्वचा के मुड़ने के स्थान की त्वचा का रंग गहरा हो जाता है, वह मोटी हो जाती है। यह समस्या गर्दन, कोहनी, अंगुलियों के पोरों पर हो सकती है। इनमें त्वचा आसानी से क्षतिग्रस्त हो सकती है जिनमें फंफूद, यीस्ट जीवाणुओं से संक्रमण हो सकता है।
- मोटे व्यक्तियों के कमर–दर्द से ग्रस्त होने की संभावना भी रहती है।
- मोटापे के कारण, शिराओं में रक्त जमाव के कारण शिराएं फूल सकती हैं और स्फीत शिरा (वेरीकोज वेन) की समस्या हो सकती है।
- मोटापे के कारण पेट की पेशियां कमजोर होने से हर्निया हो सकता है।
- अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि मोटे व्यक्तियों में विभिन्न कारणों से ऑपरेशन करवाने की ज्यादा जरूरत होती है, आपरेशन के दौरान और बाद में जटिलताओं तथा संक्रमण की ज्यादा संभावना रहती है।
- मोटे व्यक्तियों में कुछ मानसिक समस्याएं, जैसे अवसाद–ग्रस्त होने की ज्यादा संभावना होती है।

मोटापा शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक, सामाजिक दृष्टिकोण से अभिशाप है। बदलती जीवन शैली, आदतों, व्यवहार, खानपान इत्यादि कारणों से मोटों की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है। इसके प्रति जन साधारण में जागरूकता उत्पन्न होना आवश्यक है जिससे वे प्रयास करें कि वजन बढ़े नहीं, सामान्य वजन के आसपास रहें। यदि वजन ज्यादा है तो, भोजन में बदलाव लाकर, सक्रियता स्तर बढ़ा कर, नियमित व्यायाम कर तथा व्यवहार में बदलाव लाकर वजन कम कर इसको मानक वजन के पास लाएं और इस पर नियंत्रण रखें।

मोटापा, अब एक रोग ही माना जाता है, निरंतर वजन देखते रहने और उसे नियंत्रित करते रखने के प्रयास ताजिंदगी करने पड़ते हैं। स्वास्थ्यवर्धक जीवन शैली रखें; स्वस्थ, दीर्घायु हों।

***

11

जलवायु परिवर्तन एवं इसका कृषि पर प्रभाव

डॉ. बी.सी. जाट

परिचय

पृथ्वी पर जलवायु परिवर्तन का यह दौर नया नहीं है। भूवैज्ञानिक इतिहास में अब तक चार बार जलवायु में बड़े बदलाव आए हैं। इस दौरान पृथ्वी का औसत तापमान 15 डिग्री सें. से अधिकतम 27 डिग्री सें. तक तथा न्यूनतम 7 डिग्री सें. तक पहुँच चुका है। प्रारंभ में पृथ्वी के तापमान मे कमी तब आई थी, जब भू–सतह के बड़े हिस्से पर हिम आवरण छा गया था। ऐसा हिमकाल सर्वप्रथम 75 करोड़ वर्ष पूर्व आया था। अंतिम हिमकाल अत्यंत नूतन (प्लाइस्टोसीन) युग में आया था, जब यरोप एवं उत्तरी अमेरिका के बड़े भाग पर हिम परत बन गई थी। दुनिया में प्रत्येक हिमकाल के उपरांत तापमान में वृद्धि होती है तथा एक समय वह चरम पर पहुँच जाता है, जिसे वैश्विक तापन कहते हैं। इस प्रकार पृथ्वी पर जलवायु में बदलाव होना प्राकृतिक चक्र का एक हिस्सा है।

अर्थ एवं साक्ष्य

वर्तमान जलवायु–परिवर्तन विश्व के तापमान में वृद्धि की दिशा में हो रहा है, इसलिए अनेक लोग विश्व तापमान में वृद्धि को ही जलवायु परिवर्तन मान रहे हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। तापमान जलवायु का प्रमुख तत्व है तथा इसे जलवायु परिवर्तन का प्रमुख संकेतक माना जाता है। इसलिए तापमान में औसत से कमी या वृद्धि होने की स्थिति को जलवायु परिवर्तन की दशा माना जाता है।

जलवायु परिवर्तन की वर्तमान दिशा तापमान वृद्धि की ओर है। जब कैम्ब्रिय–पूर्व युग में हिमकाल आया था, तब भी जलवायु परिवर्तन हुआ था। विगत दो हजार वर्षों से आए जलवायु परिवर्तनों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सन् 900 से 1300 तक का काल उष्णतम रहा, फिर तापमान में कमी आई। तत्पश्चात् सन् 1450 से 1850 तक का काल ठंडा रहा, जिसे विश्व स्तर पर लघु हिमकाल कहा गया। सन् 1850 के बाद वर्तमान जलवायु परिवर्तन का दौर आया, जब पश्चिमी सभ्यता के देशों ने दुनिया में तेजी से औद्योगीकरण को बढ़ावा दिया। जलवायु चक्र में बीसवीं शताब्दी में स्पष्टतया वर्तमान जलवायु परिवर्तन के साक्ष्य हमारे सामने आने लगे तथा 1970 के बाद तापमान में तेजी से वृद्धि दर्ज की गई।

पृथ्वी के तापमान का रिकॉर्ड रखना सर्वप्रथम सन् 1861 में प्रारंभ हुआ। विगत दो शताब्दियों के तापमान संबंधी रिकॉर्ड के अनुसार बीसवीं सदी के तापमान में औसत से 0.6 डिग्री सें. वृद्धि हुई है। इसका संकेतक यह भी रहा है कि औसत सागर तल में भी 10–20 सेमी. की वृद्धि हुई है। हिमनद पिघल रहे हैं, मौसमी बदलाव तेजी से देखे जा रहे हैं ऐन्टार्कटिका एवं आर्कटिका क्षेत्र की हिम तेजी से पिघल रही है। उपग्रह से प्राप्त चित्रों में ऐन्टार्कटिका से बड़े हिमनदों के टूटकर अलग होने के चित्र देखे गए हैं।

जलवायु–परिवर्तन के कारण :

जलवायु-परिवर्तन के लिए प्राकृतिक एवं मानवीय दोनों कारक उत्तरदायी हैं, लेकिन प्राकृतिक कारक अपना प्रभाव एक निश्चित समयावधि में डालते हैं, जबकि मानवीय कारकों के प्रभाव तात्कालिक होते हैं। प्राकृतिक कारकों में सौर विकिरण में परिवर्तन, ऐल्बिडो में परिवर्तन, पृथ्वी की कक्षा में अंतर (उत्केंद्रिकता, घूर्णन अक्ष में झुकाव तथा पुरस्सरण) ध्रुवों का परिभ्रमण तथा ज्वालामुखी राख व कार्बन डाइ ऑक्साइड आदि प्रमुख हैं। ये सभी प्राकृतिक कारक अपने एक निश्चित प्राकृतिक चक्र में रहते हुए ही जलवायु में समय–समय पर परिवर्तन करते हैं तथा चक्र कम–से–कम बीस हजार वर्ष से लेकर लाखों वर्षों के हो सकते हैं। लेकिन वर्तमान जलवायु-परिवर्तन प्राकृतिक कम तथा मानवजनित अधिक माना गया है, जिसके लिए विगत शताब्दी में किए गए प्राकृतिक संसाधनों के अनियोजित एवं अविवेकपूर्ण दोहन तथा औद्योगीकरण के क्रांतिकारी विकास को उत्तरदायी माना गया है।

जलवायु में वैश्विक परिवर्तनों के मूल्यांकन हेतु विश्व मौसम विज्ञान संगठन (WMO) एवं संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) ने मिलकर सन् 1988 में इंटरगवर्न्मेन्ट पैनल ऑन क्लाइमेट चेंज (IPCC) नामक वैज्ञानिक दल का गठन किया। आई.पी.सी.सी. ने विगत बीस वर्षों में जलवायु-परिवर्तन संबंधी चार रिपोर्टें प्रस्तुत की हैं। चौथी रिपोर्ट फरवरी 2007 में प्रस्तुत की गई, जिसमें वर्तमान में हो रहे जलवायु-परिवर्तन के साक्ष्य पेश कर इसके लिए पूर्णतया मानव के प्रकृति विरोधी क्रिया–कलापों को उत्तरदायी वृद्धि माना गया है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि पृथ्वी पर बीसवीं शदी के उत्तरार्ध में हरित गृह गैसों की मात्रा में हुई है, जिनमें CO_2 का तो वायुमंडल में सकेंद्रण विगत 100 वर्षों में सर्वाधिक बताया गया है। इनके साथ ही मेथन एवं नाइट्रस ऑक्साइड की मात्रा भी बढ़ी है। हरित गृह गैसों के कुल उत्सर्जन में अकेले अमेरिका का हिस्सा 25 प्रतिशत है, जबकि अमेरिका तथा उसके साथ अनेक विकसित देश इस तथ्य को यह कहकर नजरंदाज कर रहे हैं कि अफ्रीकी एवं दक्षिणी एशियाई देश ही जलवायु परिवर्तन के लिए उत्तरदायी हैं, क्योंकि उनके पास उन्नत तकनीकों का अभाव है।

जलवायु-परिवर्तन का कृषि पर प्रभाव

कृषि-व्यवस्था प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से पूर्णतया प्राकृतिक तंत्र का हिस्सा है तथा इस पर दुनिया की 670 करोड़ की आबादी का भरण-पोषण निर्भर है। यहाँ कृषि को विस्तृत अर्थों में लिया जा रहा है, जिसमें खाद्यान्न फसलों के साथ जल कृषि, मुर्गीपालन, मधुमक्खी–पालन जैसी क्रियाओं को भी लिया जा रहा है। ये सभी पूर्णतया संतुलित जलवायु पर निर्भर करते हैं तथा जलवायु में आए बदलाव से इस संपूर्ण कृषि-व्यवस्था पर विपरीत प्रभाव पड़ रहे हैं। कहीं सूखा तथा कहीं बाढ़ की स्थिति बनने से कृषि-उत्पादन प्रभावित होता है तथा इससे खाद्य सुरक्षा संकट में है। जिन देशों में जनसंख्या का बड़ा भाग खाद्य फसलों पर निर्भर है, वहाँ वर्षा–आधारित कृषि होने से वर्षा में कमी आने पर कृषि उपजों पर दुष्प्रभाव पड़ता है तथा कुपोषण की स्थिति बन रही है। दुनिया में ऐस कुपोषण से प्रतिवर्ष लगभग 35 लाख लोगों की मौत हो जाती है। वर्तमान में जलवायु-परिवर्तन के कृषि पर नीचे लिखे प्रभाव देखे जा रहे हैं –

(1) जल की उपलब्धता पर प्रभाव जलवायु परिवर्तन से जल की उपलब्धता घटेगी, क्योंकि तापमान बढ़ने से स्थलीय हिम–राशियाँ पिघल रही हैं तथा स्वरूप जल लवणीय सागरों में मिल रहा है। इससे हिमनदों की प्राकृतिक रूप से पिघलने की प्रक्रिया बदल गई है तथा कृषि पर जल की उपलब्धता का विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। वर्तमान में भारत सहित

दुनिया के अनेक हिस्सों में कृषि के लिए जल की कमी महसूस की जा रही है। भारत में इंदिरा गाँधी नहर परियोजना में यह प्रभाव स्पष्टताया देखा जा सकता है, जहाँ निरंतर जल की आवक कम हो रही है। इसमें जल हिमालय से आता है। फलस्वरूप राजस्थान एवं पंजाब के बीच जल की उपलब्धता पर अनेक बार विवाद होते रहते हैं। आने वाले समय में देश के अनेक हिस्सों में ऐसा जलाभाव देखा जाएगा।

(2) कृषि उत्पादन पर प्रभाव : विश्व तापमान में वृद्धि से कृषि स्वरूप में बदलाव आ रहा है तथा जल की कमी एवं मृदा उर्वरता में परिवर्तन से कृषि उत्पादन घट रहा है। प्रसिद्ध पत्रिका नेचर की एक रिपोर्ट के अनुसार विश्व तापमान में वृद्धि के कारण मृदा में कार्बन की मात्रा प्रतिवर्ष 0.6 प्रतिशत की दर से कम हो रही है। इंग्लैंड में हुए एक शोध में पाया गया है कि यहाँ मृदा से प्रतिवर्ष 40 लाख टन का कार्बन का उत्सर्जन हो रहा है। साथ ही तापमान में वृद्धि से मृदा नमी में भी कमी आ रही है जिसका प्रभाव भी उर्वरता शक्ति पर पड़ रहा है। इन सभी से कृषि उत्पादकता में कमी आएगी। स्थानीय स्तर पर आने वाले मौसमी बदलावों के प्रभाव से फसलों में रोग अधिक लगने लगे हैं, जिनकी रोकथाम के लिए कीटनाशियों का प्रयोग बढ़ा है, जो भी मृदा-उर्वरता को कम कर आगामी समय में उत्पादन को कम करेगा।

(3) सूखा एवं बाढ़ विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) ने चेतावनी दी है कि आगामी वर्षों में विश्व तापमान में वृद्धि से बार–बार बाढ़ एवं सूखे के कारण भारत में खाद्यान्न उत्पादन में 18 प्रतिशत तक कमी आएगी। भारत के तटीय क्षेत्रों में कृषि क्षेत्र नष्ट हो सकते हैं। आई.पी.सी.सी. के अध्यक्ष आर.के. पचौरी ने स्पष्ट किया है कि आने वाले वर्षों से भारत में कृषि पर विश्व तापमान में वृद्धि का प्रभाव बाढ़ एवं सूखे दोनों में पड़ेगा।

(4) हिमनदों के पिघलने का प्रभाव विश्व तापमान में वृद्धि से सतही हिमनदी तीव्रता से पिघल रहे हैं, जिनसे जलीय स्रोतों का अस्तित्व संकट में है। इसका प्रभाव दुनिया की कृषि के उस बड़े भाग पर पड़ेगा जो पूर्णतया सिंचाई पर आधारित है। इससे सतही प्रवाह में कमी आने से सिंचित क्षेत्र घटेगा एवं कृषि–क्षेत्र प्रभावित होगा। ऐसा भारत में वर्तमान में देखा जाने लगा है।

इनके अतिरिक्त बढ़ते तापमान के प्रभाव से कृषि–भूमि के क्षेत्र में भी कमी आएगी। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने एक शोध कर बताया है कि तापमान बढ़ने एवं पवनों की गति में वृद्धि से अफ्रीका के मरुस्थलीय क्षेत्रों में धूल भरी आंधियों की तीव्रता व बारंबारता बढ़ेगी। फलस्वरूप कृषि–योग्य भूमि रेत के टीलों में बदल जाएगी। आई.पी.सी.सी ने भी अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट किया है कि ऐसा होने से अनेक अफ्रीकी देशों में सन् 2080 तक कृषि–क्षेत्र घटकर आधा रह जाएगा, जिससे गंभीर खाद्य संकट उत्पन्न होगा। दूसरी ओर आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैंड में तापमान बढ़ने से दावानल बढ़ेगी तथा कृषि बुरी तरह प्रभावित होगी। इस प्रकार वैश्विक स्तर पर जलवायु परिवर्तन से कृषि–तंत्र बड़े पैमाने पर प्रभावित होगा। खाद्यान्न उत्पादन घटेगा तो लोग मत्स्य एवं मांस पर निर्भर होंगे, लेकिन तटीय क्षेत्रों की पारिस्थितिकी बदलने से मत्स्यन भी प्रभावित हो रहा है।

दुनिया में हो रहे इस जलवायु परिवर्तन को एकाएक रोक पाना तो मुश्किल है, लेकिन मानवजनित प्रकृति-विरोधी क्रिया-कलापों पर नियंत्रण लगाकर इसे समय रहते संतुलित अवस्था में लाया जा सकता है, क्योंकि प्राकृतिक बदलाव प्राकृतिक स्वभाव में उतने घातक प्रभाव नहीं छोड़ते, जितने मानवजनित बदलावों से मिलकर होते हैं, क्योंकि प्राकृतिक बदलावों की गति

धीमी होती है तथा जीव–जगत् समय के साथ उनके अनुसार अनुकूलित हो जाता है। लेकिन वर्तमान मनुष्य अनुकूलित होने की जगह उसे गति दे रहा है तथा समाधान की जगह उसके लिए उत्तरदायी होने की राजनीति कर रहा है। इसमें भारत फिर भी अंतर्राष्ट्रीय मंच पर सहयोग का हाथ बढ़ा रहा है, लेकिन विकसित देश हमारा सहयोग न करके इसके लिए हमें ही उत्तरदायी ठहरा रहे हैं, जो मानव-जाति के भविष्य पर एक प्रश्नचिह्न है, जिसका जवाब भी हम ही हैं।

***

विज्ञान समाचार

बर्फ की परते खतरे में

दीपक कोहली

एक ताजा अध्ययन में समुद्री बर्फ के खत्म होने की दर में तेजी से इजाफे पर चिंता प्रकट करते हुए अंदेशा जताया गया है कि अगले दो दशकों में गर्मियों के दौरान आर्कटिक से बर्फ गायब हो सकती है। कैंब्रिज यूनिवर्सिटी के पोलर ओशन फीजिक्स ग्रुप के अनुसंधान पर आधारित रिपोर्ट में संभावना व्यक्त की गई है कि 2020 की गर्मियों में मालवाहक पोत उत्तरी ध्रुव में खुले पानी में सफर करने लग सकते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि धरती वह हिम शिखर खो देगी जिसे अंतरिक्ष से ली गई तस्वीरों में अभी भी देखा जा सकता है। 'द टाइम्स ऑनलाइन' ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि यह मार्ग हर साल कई माह तक बर्फ से मुक्त रहेगा। अभी सुदूर पूर्व से यूरोप की सामान्य यात्रा स्वेज नहर होकर की जाती है। बर्फ से मार्ग के मुक्त होने से इस यात्रा में तीन हजार मील की कटौती हो जाएगी।

12

बिब्लियोथेरेपी अर्थात् पुस्तकों द्वारा चिकित्सा

सीताराम गुप्ता

आपने दिल्ली के प्रसिद्ध सूफ़ी संत हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया (रह.) का नाम अवश्य सुना होगा। हिंदी-उर्दू के प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो उनके प्रिय शिष्य थे। एक बार हज़रत निज़ामुद्दीन साहिब की तबीयत ख़राब हो गई। अमीर खुसरो ने अपने पीर (गुरू) का दिल बहलाने के लिए एक किस्सा उन्हें सुनाया जिसका नाम था 'चार दरवेशों का क़िस्सा'। किस्सा सुनकर हज़रत निज़ामुद्दीन साहिब अच्छे हो गए और उन्होंने दुआ दी कि जो इस किस्से को सुने, आरोग्य प्राप्त करे। उनकी दुआ से इस किस्से की घर-घर चर्चा होने लगी। जहाँ कोई बीमार होता, घर वाले बीमार को ये किस्सा सुनाकर उसका जी बहलाते। जो भी हो किस्सागोई की कला का भी खूब विकास हुआ।

कहने-सुनने में तो यह विचित्र-सा ही लगता है कि पुस्तक पढ़ना अथवा क़िस्से कहानी सुनना उपचार की एक विधि हो सकती है। लेकिन पुस्तकों द्वारा चिकित्सा उपचार की वह जाँची-परखी विधि है जिसमें मन की शक्ति का भरपूर इस्तेमाल किया जाता है। वास्तव में यह मन द्वारा उपचार की एक विधि है। किस्सें-कहानियाँ पढ़ने या सुनने से मन एकाग्र होता है तथा कल्पना-शक्ति का विकास होता है या कह सकते हैं कि एकाग्रता तथा कल्पना या चाक्षुषीकरण द्वारा हम मन को एक दिशा या दशा से दूसरी दशा में रूपांतरित कर दुख से निजात पा लेते हैं। जिस प्रकार दर्द-निवारक दवा लेने से दर्द की शिद्दत कम हो जाती है उसी तरह किसी कथा-कहानी को सुनने से भी दर्द की शिद्दत कम हो जाती है क्योंकि हम कहानी के पात्रों के क्रियाकलापों से एकाकार होकर अपनी पीड़ा को भूल जाते हैं।

अनेक अवसरों पर विभिन्न धार्मिक पुस्तकों का पाठ या अखंड पाठ वास्तव में मन को एकाग्रता प्रदान कर एक निश्चित दिशा में प्रवृत्त करना ही तो है। रामचरितमानस का पाठ हो अथवा सुंदरकाड का पाठ या भागवत कथा, ये सब एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए किए जाते हैं, और वह उद्देश्य है मानसिक स्थिति में परिवर्तन अथवा उपचार। आरोग्य के लिए रोग के भय से मुक्ति, समृद्धि के लिए अभाव के भय से मुक्ति, जीवन को संपूर्णता से जीने के लिए मृत्यु के भय से मुक्ति, ज्ञान के लिए अज्ञान के भय से मुक्ति, प्रकाश के लिए अंधकार के भय से मुक्ति, प्रेम के लिए घृणा के भय से मुक्ति, विजय के लिए पराजय के भय से मुक्ति, पूर्णता के लिए अपूर्णता के भय से मुक्ति, सत्य के लिए असत्य के भय से मुक्ति प्राप्त हो जाना ही उपचार है, जो मन के नियंत्रण तथा उचित दिशा-निर्देश द्वारा ही संभव है। किस्से-कहानियों द्वारा नकारात्मक विचार-रूपी व्याधियों का नियंत्रण तथा अपेक्षित रूपांतरण आसानी से किया जा सकता है।

प्रायः देखा गया है कि विषम या प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न होने पर सुंदरकांड का पाठ करने से राहत मिलती है। संकट, भय अथवा तथाकथित

प्रेतबाधा आदि उपस्थित होने पर हनुमान चालीसा का पाठ करने से स्थिति में सुधार होता है। अनेक अवसरों पर रामचरितमानस की अनेक चौपाइयों, दोहों अथवा सोरठों का पाठ करने से स्थितियाँ परिवर्तित प्रतीत होती हैं। रामकुमार वर्मा अपने नाटक 'संत तुलसीदास' की भूमिका में मानस के एक सोरठे का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इसके उच्चारण से प्रेतबाधा फौरन समाप्त हो जाती है। ऐसा उन्होंने स्वयं देखा था सोरठा निम्न प्रकार से है:

प्रणवउँ पवन कुमार, खल बन पावक ग्यान घन,
जासु हृदय आगार, बसहिं राम सर चाप धर।

यदि मनोयोग से 'मानस' अथवा पंक्ति-विशेष का पाठ किया जाए तो वांछित लाभ मिलता ही है लेकिन मनोयोग से करने पर, श्रद्धापूर्वक या विश्वास के साथ करने पर ही। और जब ये सब तत्व आ उपस्थित होते हैं, जो मन की शक्ति द्वारा उपचार के तत्व हैं, तो यह मन द्वारा उपचार की एक विधि बन जाती है।

यही स्थिति भगवद्गीता की भी है। गीता का उद्देश्य आध्यात्मिक ज्ञान के साथ–साथ व्यक्ति की मनोदशा परिवर्तित करना भी है। मृत्यु शय्या पर अथवा मृत्यूपरांत कई अवसरों पर गीता पाठ का उद्देश्य है मनुष्य को विषाद की स्थिति से उबारने और इसके लिए जीवन की निस्सारता अथवा आत्मा की अमरता के माध्यम से संदेश देकर मनुष्य के मानसिक धरातल में परिवर्तन किया जाता है। उपचार के लिए हिंदू धर्मग्रंथों का ही उपयोग नहीं किया जाता अपितु सभी धर्मों के ग्रंथों के उपयोग उपचार के लिए किया जाता है। कुर्आनख्वानी अथवा कुर्आन की अनेक आयतों का पाठ भी विशेष अवसरों पर इसी विशेष उद्देश्य अथवा उपचार के लिए ही तो किया जाता है। मुहर्रम के अवसार पर नौहाख्वानी वास्तव में डेढ़ सहस्राब्दि पूर्व घटित कर्बला के सदमे से उबरने का प्रयास ही तो है।

अनेक मंत्रों का उच्चारण भी हम उपचार के लिए करते हैं। गीता के अनेक श्लोकों का पाठ व्याधि-विशेष के उपचार के लिए भी किया जाता है। जिसका विस्तृत वर्णन टी.आर. शेषाद्रि ने अपनी पुस्तक 'द क्यूरेटिव पावर्स ऑफ द होली गीता' में किया है। दुर्गासप्तशती के अनेक मंत्र ऐसे हैं जिनका जाप विशेष परिस्थितियों में अपेक्षित सिद्धि प्रदान करता है।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना अनिवार्य है कि मंत्र-चिकित्सा भी वास्तव में मन द्वारा उपचार की एक विधि है। मंत्र-चिकित्सा कहीं पुस्तक-चिकित्सा के समकक्ष ठहरती है तो कहीं पुस्तक-चिकित्सा के एक प्रकार के रूप में। वेदों से अनेक मंत्रों का उच्चारण भी उपचार में मददगार होता है। गायंत्री मंत्र हो अथवा महामृत्युंजय मंत्र, सभी का जाप या उच्चारण किसी न किसी रूप में किसी न प्रकार के उपचार में मदद करता है। जब मंत्रोच्चारण एक विशेष लय अथवा पद्धति से किया जाता है तो उसमें संगीत के गुण भी समाहित हो जाते हैं। अतः संगीत–चिकित्सा भी मंत्र–चिकित्सा अथवा पुस्तक के साथ–साथ चलती है। ये सब विधियाँ अभिन्न हैं।

बच्चों को लोरियाँ गाकर अथवा कहानियाँ सुनाकर सुलाने का प्रचलन पूरे विश्व में है। लोरी एक ऐसी विधा है जिसमें कहानी तथा कविता के अतिरिक्त संगीत भी भरपूर विद्यमान होता है। जो बच्चे दादी–नानी से क़िस्से–कहानियाँ सुनते हैं वे बच्चे भावनात्मक रूप से अपेक्षाकृत अधिक मज़बूत होते हैं। जीवन में सफलता पाने के लिए पढ़ना–लिखना ज़रूरी है और पढ़ाई में सफलता के लिए ध्यानपूर्वक पढ़ना। ध्यानपूर्वक पढ़ना या अन्य कोई कार्य करना, ध्यान करना अथवा मेडिटेशन ही तो है। ध्यानपूर्वक पढ़ें, जीवन में अपेक्षित सफलता के साथ–साथ आरोग्य की भी प्राप्ति होगी।

जब कहानी का माध्यम बदल जाता है अर्थात्

एक पुस्तक के स्थान पर कथा का फिल्मांकन अथवा मंच प्रस्तुति की जाती है तो उसका भी वही प्रभाव होता है। प्रकारांतर से 'रीलथेरेपी' या सिनेमा द्वारा उपचार पुस्तक–चिकित्सा का ही एक रूप है। नाटक में अभिनय करना अथवा नाट्य–प्रस्तुति देखना दोनों में उपचार के तत्व मौजूद हैं। अभिनेता या नाट्यकर्मी अथवा निर्देशक अभिनय या प्रस्तुति के बाद प्रायः अधिकाधिक स्वस्थ और उत्साहित अनुभव करते हैं।

पुस्तकें पढ़ना ही नहीं उनका रूपांतरण करना भी मन द्वारा उपचार के तत्वों से प्रभावित होता है। पुस्तक का नाट्यांतरण हो अथवा लिप्यंतरण या भाषांतरण, ये कार्य के साथ–साथ आपका उपचार करने में भी सक्षम हैं। इससे न केवल आपकी एकाग्रता का विकास होता है, अपितु सर्जनात्मकता का आनंद भी मिलता है। साथ ही आपके तनाव और चिंता के स्वर में कमी आती है जिससे आपकी रोग–अवरोध क्षमता विकसित होकर आपको स्वस्थ बनाए रखने में सहायक होती है।

हर लेखक हर नई पुस्तक अधिक उत्साहपूर्वक प्रारंभ करता है तथा हर नई पुस्तक की समाप्ति पर अधिकाधिक चुस्त–दुरुस्त अनुभव करता है। कार्याधिक्य या थकान के बावजूद उत्साह में कमी नहीं आती। एकाग्रता के विकास के कारण आप ध्यान या मेडिटेशन के लाभ से लाभान्वित होते हैं। कार्य की पूर्णता से आपको जो आनंद प्राप्त होता है उसके फलस्वरूप मस्तिष्क जिन उपयोगी और स्वास्थ्यप्रद हॉर्मोनों का उत्सर्जन करता है वे भी आपको स्वस्थ रखने में सहायक होते हैं।

कई व्यक्ति अनिद्रा की समस्या से पीडित होते हैं। सोने से पहले या बिस्तर पर लेटकर थोड़ा ध्यान अथवा मेडिटेशन करने से नींद शीघ्र ही आ जाती है। इससे नींद अच्छी भी आती है। कुछ लोग रात को बिस्तर में जाने पर कोई न कोई पुस्तक पढ़ना शुरू कर देते हैं। कई बार तो दो–चार पेज़ पढ़ने पर ही आँखें बोझिल होने लगती हैं और व्यक्ति पुस्तक को बंद कर और बत्ती बुझाकर सोने को विवश हो जाता है। इसका कारण यही है कि पढ़ने से एकाग्रता का विकास होता है। एकाग्रता ही ध्यान अथवा मेडिटेशन है जो मन द्वारा उपचार का महत्वपूर्ण तत्व है। इस प्रकार 'पुस्तक–चिकित्सा' अनिद्रा का भी प्रभावी उपचार है। रात को जब भी अनिद्रा से ग्रस्त हों कोई पुस्तक निकालकर पढ़ना शुरू कर दें। ध्यान अथवा मेडिटेशन की इस विधि अर्थात् 'पुस्तक चिकित्सा' से आप अवश्य लाभान्वित होंगे।

***

लेखक-परिचय

1. ***डॉ. दीपक कोहली***
5/104, विपुल खंड,
गोमती नगर, लखनऊ–226010

2. ***डॉ. दिनेश मणि***
35/3 जवाहर लाल नेहरू रोड
जॉर्ज टाउन, इलाहाबाद–211002

3. ***डॉ. रमेश चंद्र***
उप निदेशक, हिंदी,
भारतीय मानक ब्यूरो
नई दिल्ली–110002

4. ***डॉ. जितेंद्र कुमार गुप्त***
पहाड़ी चुंगी, राज मार्ग
चिरगांव, झांसी–284301

5. ***डॉ. सी.पी. सिंह***
जंतु विज्ञान विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
नारायण नगर
पिथौरागढ़, उत्तर प्रदेश–262551

6. ***डॉ. आर.एस. सेंगर***
सह प्रोफेसर, एवं
रेशू चौधरी
जैव प्रौद्योगिकी संभाग,
सरदार वल्लभभाई पटेल
कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
मेरठ–250110

8. ***श्री अशोक सेलवटकर,*** वैज्ञानिक अधिकारी
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
रामकृष्णपुरम् नई दिल्ली–110066

9. ***डॉ. दिलीप कुमार मौर्य***
कायचिकित्सा विभाग
आयुर्वेद संकाय
चिकित्सा विज्ञान संस्थान
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
वाराणसी–221005

10. ***डॉ. हेमलता पंत***
डब्ल्यू ओ.एस.बी./डी.एस.टी. योजना
जैविक विज्ञान एवं ग्रामीण विकास अकादमी
झूंसी, इलाहाबाद

11. ***डॉ. नवीन कुमार बोहरा***
प्लाट नं. 389, गली नं. 10
मिल्कमैन कॉलोनी, पाल रोड, जोधपुर

12. ***डॉ. जे.एल. अग्रवाल***
3 ज्ञान लोक, मयूर विहार
ई–शास्त्री नगर, मेरठ–250004 उ. प्र.

13. ***डॉ. बी.सी. जाट***
भूगोल विज्ञान,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
नीम का थाना, सीकर (राजस्थान)

14. ***श्री सीताराम गुप्ता***
ए–डी, 106–सी पीतमपुरा,
नई दिल्ली–110034

आयोग के प्रकाशन

शब्दसंग्रह, शब्दावलियां

भौतिकी	
भौतिकी शब्द संग्रह	119.00
अंतरिक्ष विज्ञान शब्दावली	45.00
इलेक्ट्रॉनिकी परिभाषा कोश	22.00
तरल यांत्रिकी परिभाषा कोश	10.00
भौतिकी परिभाषा कोश	700.00
गृह विज्ञान	
गृह विज्ञान शब्द-संग्रह	600.00
कंप्यूटर विज्ञान एवं सूचना प्रौद्यागिकी	
कंप्यूटर विज्ञान शब्दावली	57.00
कंप्यूटर विज्ञान परिभाषा कोश	102.00
सूचना प्रौद्योगिकी शब्द-संग्रह	231.00
रसायन	
रसायन शब्द संग्रह	592.00
इस्पात एवं अलौह धातुकर्म शब्दावली	55.00
उच्चतर रसायन परिभाषा कोश	17.00
धातुकर्म परिभाषा कोश	278.00
रसायन (कार्बनिक) परिभाषा कोश	25.00
वाणज्यि	
वाणिज्य शब्दावली	259.00
पूंजी बाजार एवं संबद्ध शब्दावली	79.00
वाणिज्य परिभाषा कोश	24.00
रक्षा	
समेकित रक्षा शब्दावली	284.00
गुणता नियंत्रण	
गुणता नियंत्रण शब्दावली	38.00
भाषा विज्ञान	
भाषा विज्ञान शब्दावली	113.00
(अेग्रजी-हिंदी तथा हिंदी-अंग्रेजी)	
भाषा विज्ञान परिभाषा (कोश खंड 1)	89.00
भाषा विज्ञान परिभाषा (कोश खंड 2)	59.00
जीव विज्ञान	
कोशिका जैविकी शब्द-संग्रह	62.00
पर्यावरण विज्ञान शब्द-संग्रह	381.00
प्राणि विज्ञान परिभाषा कोश	216.00
सूक्ष्म जैविकी परिभाषा कोश	45.00
कोशिका जैविकी परिभाषा कोश	121.00
लोक प्रशासन	
लोक प्रशासन शब्दावली	52.00
गणित	
गणित शब्द-संग्रह	143.00
गणित परिभाषा कोश	203.00
सांख्यिकी परिभाषा कोश	18.00
भूगोल	
भूगोल शब्द-संग्रह	200.00
भूगोल परिभाषा कोश	10.00
मानव भूगोल परिभाषा कोश	18.00
मानचित्र विज्ञान परिभाषा कोश	231.00
अनुप्रयुक्त विज्ञान	
प्राकृतिक विपदा शब्दावली	17.00
जलवायु विज्ञान शब्दावली	131.00
वानिकी शब्द-संग्रह	440.00

मनोविज्ञान

मनोविज्ञान परिभाषा कोश	9.50
मनोविज्ञान शब्दावली	247.00

इतिहास

इतिहास परिभाषा कोश	20.50

प्रशासन

प्रशासन शब्दावली (हिंदी-अंग्रेजी)	20.00
प्रशासन शब्दावली (अंग्रेजी-हिंदी)	

शिक्षा

शिक्षा परिभाषा कोश खंड-1	13.00
शिक्षा परिभाषा कोश खंड-2	99.00

आयुर्विज्ञान

आयुर्विज्ञान परिभाषा कोश (शल्य विज्ञान)	338.00
आयुर्विज्ञान के सामान्य शब्द एवं वाक्यांश (अंग्रेजी-तमिल-हिंदी)	279.00

समाज शास्त्र

समाज कार्य परिभाषा कोश	16.25
समाज-शास्त्र परिभाषा कोश	71.40

नृविज्ञान

सांस्कृतिक नृविज्ञान परिभाषा कोश	24.00

बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह :

बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान, खंड 1	87.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान, खंड 2	87.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान (हिंदी-अंग्रजी)	236.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह मानविकी और सामाजिक विज्ञान खंड 1, 2	292.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह मानविकी और सामाजिक विज्ञान (हिंदी-अंग्रेजी)	350.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान कृषि विज्ञान	278.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह विज्ञान : आयुर्विज्ञान, भेषज विज्ञान, शारीरिक नृविज्ञान	239.00
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह : आयुर्विज्ञान कृषि एवं इंजीनियरी (हिंदी-अंग्रेजी)	48.50
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह: मुद्रण इंजीनियरी	48.50
बृहत् परिभाषिक शब्द-संग्रह: इंजीनियरी (सिविल, विद्युत्, यांत्रिकी)	340.00
बृहत् फरिभाषिक शब्द-संग्रह : पशु चिकित्सा विज्ञान	82.00
बृहत् पारिभाषिक शब्द-संग्रह: प्राणि विज्ञान	311.00

भू-विज्ञान

भूविज्ञान शब्द-संग्रह	88.00
सामान्य भूविज्ञान शब्दावली	101.00
आर्थिक भूविज्ञान शब्दावली	75.00
भूभौतिकी शब्दावली	67.00
शैलविज्ञान शब्दावली	82.00
खनिज विज्ञान शब्दावली	130.00
अनुप्रयुक्त भूविज्ञान शब्दावली	115.00
भूविज्ञान परिभाषा कोश	63.00
संरचनात्मक भूविज्ञान परिभाषा कोश	13.00
संरचनात्मक भूविज्ञान शब्दावली	73.00
शैलविज्ञान परिभाषा कोश	153.00
पेट्रोलियम प्रौद्योगिकी परिभाषा कोश	173.00
खनन एंव भूविज्ञान शब्द-सग्रह	32.00
संरचनात्मक भूविज्ञान एवं विवर्तनिकी शब्दसंग्रह	15.00
जीवाश्मविज्ञान शब्दावली	129.00

कृषि

रेशम विज्ञान शब्द-संग्रह	50.00
कृषि कीटविज्ञान परिभाषा कोश	75.00

सूत्रकृमि विज्ञान परिभाषा कोश	125.00
मृदाविज्ञान परिभाषा कोश	77.00

इंजीनियरी

रासायनिक इंजीनियरी शब्द-संग्रह	51.00
विद्युत् इंजीनियरी परिभाषा कोश	81.00
यांत्रिक इंजीनियरी परिभाषा कोश	94.00
सिविल इंजीनियरी परिभाषा कोश	10.00

वनस्पति विज्ञान

वनस्पति विज्ञान शब्द-संग्रह	86.00
वनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश	75.00
वनस्पति विज्ञान मूलभूत शब्दावाली	नि:शुल्क
पादप आनुवंशिकी परिभाषा कोश	75.00
पादपरोगविज्ञान परिभाषा कोश	75.00
पुरावनस्पति विज्ञान परिभाषा कोश	80.00

दर्शनशास्त्र

भारतीय दर्शन परिभाषा (खंड कोश 1)	151.00
भारतीय दर्शन परिभाषा (खंड कोश 2)	124.00
भारतीय दर्शन परिभाषा (खंड कोश 3)	136.00
दर्शन शास्त्र परिभाषा कोश	198.00

पुस्तकालय विज्ञान

पुस्तकालय विज्ञान परिभाषा कोश	49.00

पत्रकारिता

पत्रकारिता परिभाषा कोश	87.50
पत्रकारिता एवं मुद्रण शब्दावली	12.25

पुरातत्व विज्ञान

पुस्तकालय विज्ञान शब्दावली पुरातत्वविज्ञान परिभाषा कोश	509.00

कला

पाश्चात्य संगीत परिभाषा कोश	343.00
प्रबंधविज्ञान परिभाषा कोश	170.00

अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र परिभाषा कोश	117.00
अर्थमिति परिभाषा कोश	17.65

अन्य

अन्तर्राष्ट्रीय विधि परिभाषा कोश	344.00
नाट्यशास्त्र, फिल्म एंव टेलीविजन परिभाषा कोश	200.00
नाट्यशास्त्र, फिल्म एवं टेलीविजन शब्दावली	75.00
पर्यावरण विज्ञान मूलभूत शब्दावली	नि:शुल्क

संदर्भ ग्रंथ

ऐतिहासिक नगर	195.00
प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक नगर	109.00
समद्री यात्राएं	79.00
विश्व दर्शन	53.00
अपशिष्ट प्रबंधन	17.00
कोयला: एक परिचय	425.00
रत्न विज्ञान : एक परिचय	115.00
वाहितमल एवं आपंक : उपयोग एवं प्रबंधन	40.00
पर्यावरण प्रदूषण : नियंत्रण एवं प्रबंधन	23.00
भारत में गैस उत्पादन एवं प्रबंधन	540.00
भारत में ऊसर भूमि एवं फसलोत्पादन	559.00
2 दूरीक एवं 2 मानकित समष्टियों में संपात एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन	68.00
भारत में प्याज एवं लहसुन की खेती	82.00

पशुओं से मनुष्यों में होने वाले रोग	60.00
ठोस पदार्थ यांत्रिकी	995.00
वैज्ञानिक शब्दावली: अनुवाद एवं मौलिक लेखन	34.00
मृदा-उर्वरता	410.00
ऊर्जा-संसाधन और संरक्षण	105.00
पशुओं के कवकीय रोग: उनका उपचार एवं नियंत्रण	93.00
पराज्यामितीय फलन	90.00
सामाजिक एंव प्रक्षेत्र वानिकी	54.00
विश्व के प्रमुख धर्म	118.00
पृथ्वी : उद्भव और विकास	470.00
पृथ्वी से पुरातत्व	40.00
इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी	90.00
द्रवचालित मशीन	66.50
मैग्नेसाइट : एक भूवैज्ञानिक अध्ययन	214.00
मृदा एंव पादप-पोषण	367.00
नलकूप एवं भौमजल अभियांत्रिकी	398.00
विश्व के प्रमुख धर्मो में धर्मसमभाव की अवधारणा : एक तुलनात्मक अध्ययन	490.00
समकालीन भारतीय दर्शन के कुछ मानववादी चिंतक:	153.00
तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन	
पादपों में कीट प्रतिरोध और समेकित कीट प्रबंधन	367.00
स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी में विज्ञान लेखन	167.00
भेड़ बकरियों के रोग एवं उनका नियंत्रण	343.00
भविष्य की आशा : हिंद महासागर	154.00
भारतीय कृषि का विकास	155.00
विकास मनोविज्ञान भाग-1	40.00
विकास मनोविज्ञान भाग-2	30.00
कृषिजन्य दुर्घटनाएं	25.00
इलेक्ट्रॉनिक मापन	31.00
वनस्पतिविज्ञान पाठमाला	16.00
इस्पात परिचय	146.00
जैव-प्रौद्योगिकी: अनुसंधान एवं विकास	134.00
विश्व के प्रमुख दार्शनिक	433.00
प्राकृतिक खेती	167.00
हिंदी विज्ञान पत्रिकारिता: कल, आज और कल	167.00
मानसून पवन: भारतीय जलवायु का आधार	112.36
हिंदी में स्वतंत्रता-परवर्ती विज्ञान लेखन	280.00
पादप सुरक्षा के विविध आयाम	360.00

ग्राहक फॉर्म

सेवा में :
अध्यक्ष,
वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग,
पश्चिम खंड-7 रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली- 110066

महोदय,

कृपया मुझे **"विज्ञान गरिमा सिंधु"** (त्रैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए .....से ग्राहक बना लीजिए। मैं पत्रिका का वार्षिक सदस्यता शुल्क ..... रुपये, अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के पक्ष में, नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. .....दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूं। कृपया पावती भिजवाएं।

नाम .....

पूरा पता .....

.....

भवदीय

हस्ताक्षर

सदस्यता शुल्क:	भारतीय मुद्रा	विदेशी मुद्रा	
प्रति अंक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु 14.00	पौड 1.64	डालर 4.84
वार्षिक (व्यक्तियों/संस्थाओं के लिए)	रु 50.00	पौड 5.83	डालर 18.00
प्रति अंक (विद्यार्थियों के लिए)	रु 8.00	पौड 0.93	डालर 10.80
वार्षिक (विद्यार्थियों के लिए)	रु 30.00	पौड 3.50	डालर 2.88

डिमांड ड्राफ्ट ''अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग'' के पक्ष में नई दिल्ली स्थित किसी भी अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम व पूरा पता भी लिखें। ड्राफ्ट 'एकाउंट पेई' होना चाहिए। यदि ग्राहक विद्यार्थी है तो कृपया निम्न प्रमाण-पत्र भी संलग्न करें:

विद्यार्थी-ग्राहक प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि कुमारी/श्रीमती/श्री..... इस विद्यालय/महाविद्यालय/विश्वविद्यालय के ..... विभाग के /छात्र/की छात्रा है

हस्ताक्षर

(प्राचार्य/विभागाध्यक्ष)
(मोहर)

760 HRD/13—5

बिक्री संबंधी नियम

1. आयोग के प्रकाशन, आयोग के बिक्री पटल तथा भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के विभाग के विभिन्न बिक्री पटलों पर उपलब्ध रहते हैं।

2. सभी प्रकाशनों की खरीद पर 25% की छूट दी जाती है। कुछ पुराने प्रकाशनों पर 75 प्रतिशत तक भी छूट दी जाती है।

3. सभी तरह के आदेशों की प्राप्ति पर आयोग द्वारा इनवाइस जारी की जाती है। अपेक्षित धन राशि का बैंक ड्राफ्ट या मनीआर्डर अध्यक्ष, वैज्ञानिकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली (Chairman, C.S.T.T. New Delhi) के नाम देय होना चाहिए। चेक स्वीकार्य नहीं होगा। अपेक्षित धनराशि प्राप्त होने के पश्चात ही पुस्तकें भेजी जाती हैं।

4. चार किलोग्राम वजन तक की सभी पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल से भेजी जाती है। पुस्तकें भेजने पर पैकिंग तथा फॉवर्डिग चार्ज नहीं लिया जाता है।

5. चार किलोग्राम से अधिक की सभी पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती है तथा इन पर आने वाले सभी परिवहन-व्ययों का भुगतान मांगकर्ता द्वारा ही किया जाएगा।

6. पुस्तकें रोड ट्रांसपोर्ट से भेजने के बाद आयोग द्वारा मूल बिल्टी तत्काल पंजीकृत डाक से मागकर्ता को भेज दी जाती है। यदि निर्धारित अवधि में पुस्तकों को ट्रांसपोर्ट कार्यालय से प्राप्त न किया गया तो उस स्थिति में लगने वाले सभी तरह के अतिरिक्त प्रभारों का भुगतान मांगकर्ता को ही करना होगा।

7. रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाने वाली पुस्तकों पर न्यूनतम वजन का प्रभार अवश्य लगता है जो प्रत्येक दूरी के लिए अलग-अलग होता है। यदि संबंधित संस्था चाहे तो आयोग में सीधे ही भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त कर सकती है।

8. दिल्ली तथा उसके नजदीक के क्षेत्रों के आदेशों की पूर्ति डाक द्वारा संभव नही होगी। संबंधित संस्था को आयोग के बिक्री एकक में आवश्यक भुगतान करके पुस्तकें प्राप्त करनी होंगी।

9. पुस्तकों की पैंकिंग करते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि मांगकर्ता को सभी पुस्तकें अच्छी स्थिति में प्राप्त हों। पुस्तकें सामान्य डाक/अपंजीकृत पार्सल/रोड ट्रांसपोर्ट से भेजी जाती हैं। यदि परिवहन में पुस्तकों को किसी भी तरह का नुकसान पहुंच है तो उसका दायित्व आयोग पर नही होगा।

10. सामान्य: बिल कटने के बाद आदेश में बदलाव या पुस्तकों की वापसी नही होगी। यदि क्रय राशि का समायोजन आवश्यक होगा तो राशि वापस नहीं की जाएगी। इस स्थिति में पुस्तकें ही दी जाएंगी।

***

प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के बिक्री केंद्रों की सूची

क्र. सं.	पता
1.	प्रकाशन नियंत्रक प्रकाशन विभाग, (शहरी मामले व रोजगार मंत्रालय), सिविल लाइन्स, दिल्ली - 110054
2.	किताब महल प्रकाशन विभाग, भारत सरकार बाबा खड़ग सिंह मार्ग, स्टेट एंपोरियम बिल्डिंग, यूनिट नं. 21, नई दिल्ली - 110001
3.	पुस्तक डिपो प्रकाशन विभाग, भारत सरकार के. एस. राय मार्ग, कोलकाता - 700001
4.	बिक्री काउंटर, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सी. जी. ओ. कॉम्प्लेक्स न्यू मेरीन लाइन्स, मुंबई - 400020
5.	बिक्री काउंटर, प्रकाशन विभाग उद्योग भवन गेट नं. 3, नई दिल्ली - 110001
6.	बिक्री काउंटर, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, (लॉयर्स चैंबर) दिल्ली उच्च न्यायालय नई दिल्ली - 110003
7.	बिक्री काउंटर, प्रकाशन विभाग, संघ लोक सेवा आयोग, धौलपुर हाउस, नई दिल्ली - 110001

MGIPRRND—760 HRD/13—1000 Copies.

© भारत सरकार
प्रकाशन-नियंत्रक
जनवरी–मार्च-2011

पी. सी. एस. टी. टी. (1-3) 11
1,000

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित तथा
प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली-110064 द्वारा मुद्रित
2013